चतुर्थ अध्याय

नीरजा माधव की कहानियों में नारी विमर्श

कहानी का उदय भारतेंदुकाल से माना जाता है । उसके पहले जो भी अल्प, आख्यायिका मिलती थी वह कहानी जैसी नहीं थी परंतु उन्ही का विकास होकर कहानी का विकास समझा जा सकता है । मूलतः कहानी की उपन्यास विधा की तरह अंग्रेजी साहित्य व बंगला साहित्य से प्रेरित होकर लिखी जाने लगी । वर्तमान साहित्य में पुरुष के साथ-साथ लेखिकाओं ने भी अपना महत्वपूर्ण स्थान बनाया है । इसमें नीरजा माधव की कहानियों का अध्ययन इस अध्याय के अंतर्गत करेंगे । उनकी कहानियों में स्त्री विमर्श के सरोकार युक्त हैं । वह महिलाओं की संवेदना को अपनी कहानियों में के माध्यम से निरूपित किया है । कहानी के विभिन्न पात्रों के माध्यम से नीरजा जी ने समाज के हर वर्ग की महिलाओं की पीड़ा को दिखाया है । उनकी कहानियों के पात्र समाज के अभिन्न अंग होते हैं । गरीब, अमीर, दलित, शहरी और कामकाजी महिलाओं की पीड़ा के खिलाफ आवाज उन्होंने बड़ी संवेदनशीलता के साथ उठाया है । इस अध्याय के अंतर्गत उनके सभी आठ कहानी संग्रहों का अध्ययन किया गया । और उसमें से चयनित 15 कहानियों की इस पाठ के अंतर्गत व्याख्या व विवेचना की गयी है ।

4.1 चुप चंतारा रोना नहीं :

चंतारा जो कि एक मजदूर परिवार की है पूरा परिवार ही मजदूरी करके , पोषण करता है ।-अपना पालन उसके परिवार में पति पत्नी व दो बच्चे हैं । उसका पति जो-समारोह में किचेन में काम करती-ब्याह में दरबान बनता है । चंतारा स्वयं शादी-शादी

शादी समारोह में स्टैच्यू बनता है। ,साल का है 15-14 उसका बेटा जो ,पूड़ी बेलती है ,है जो कि आज की कहानी में भगवान शंकर के र ुप में है। उसकी बेटी जो अभी तीन साल की है जो चंतारा के साथ ही हमेशा रहती है। चंतारा एक औरत के साथ ,साथ एक पत्नी- इतनी सारी जिम्मेदारि ,एक मजदूरनी भी है ,एक माँयाँ वह बखूबी निभा रही है। एक पात्र है सरुप साव जो चंतारा की मदद करते हैं। जब चंतारा अपनी , बेटी को पूड़ी के लिए मारती है ,तो सरुप साव बच्ची के लिए पूड़ी लाकर देते है और कहते हैं कि चंतारा , बच्चे भी तो भगवान का रुप होते हैं। चंतारा की मदद भले ही सरुप साव करते हैं परंतु कमीने हैं। मदद करने के नाम पर नजदीक आना ,चंतारा जानती है कि सरुप साव जो हैं चाहते हैं। एक बार जब चंतारा अपनी बच्ची को दूध पिला रही होती है तो सरुप साव वहाँ आता है। चंतारा उसकी कामुक नजरों को पढ़ लेती है और अपने को ठीक कर लेती है क्योंकि औरत को अपनी सुरक्षा स्वयं ही करनी होती है समाज के बहुरूपियों से। जिस , तरह का प्रतिकार चंतारा कर रही है ठीक ऐसा ही प्रतिकार नारी जगत के लिए आदर्श है। चंतारा का प्रतिकार भले ही उसके स्तर का हो परन्तु शोषण व अन्याय के प्रति ऊर्जावान चरित्र है उसका। भले ही वह मुखर होकर प्रतिकार न करे परंतु वह प्रतिकार सकारात्मक है। अन्याय सहना अन्याय से बड़ा अपराध , माना जाता है। सरुप साव की कामुकतापूर्ण नजरों को पढ़कर उसके मंसूबे को पूर्ण न होने देना ही मजदूर चंतारा का अपना चिंतन , सिद्ध करता है। नीरजा माधव की कहानी की पात्र चंतारा अपने बौद्धिक स्तर पर

इसी कहानी में चंतारा का एक और प्रतिकार है जब शादी में वरमाला को देखने के लिए सभी किचेन से बाहर आते हैं। शांति चंतारा व सरुप साव सभी लोग , पास खड़े रहते हैं। फिर सरुप साव भीड़ का फायदा उठाते हुए चंतारा के पेट पर-पास वह तुर ,हाथ से छूना चाहता है। तब जैसे ही चंतारा को आभास होता हैन्त दूर हटकर सरुप साव को तीखी नजरों से देखती है। उसके इस बर्ताव से सरुप साव भी अचम्भित रह जाता है। उसको एहसास हो जाता है कि औरत में दुर्गा व लक्ष्मीबाई भी है। किसी को

अपने स्वार्थ के लिए खासकर औरत को एक आसान व सरल वस्तु समझ लेना किसी ,भी पुरुष की गलती है प्रतिकार से यह बात स्पष्ट हो जाती है । अन्याय व शोषण के विरुद्ध , प्रतिकार ही तो एक औरत की अस्मिता व अधिकार की रक्षा का प्रथम मापदण्ड है ।

अतः कहा जा सकता है कि चंतारा का अन्याय व शोषण का प्रतिकार करना किसी महानगरीय संस्कृति के मुकाबले भले ही न ठहरता होपरन्तु एक मजदूर चंतारा की बौद्धिक क्षमता उतनी है कि वह अपने उपर हो रहे अन्याय का प्रतिकार करती है । वह अपने प्रतिकार से सिद्ध करती है कि औरत मनमानी ढंग से उपयोग की वस्तु नहीं है बल्कि वह भी एक संवेदनशील व्यक्तित्व है जिसका अपना स्वयं का भी अस्तित्व है । स्वयं की मर्जी भी है । स्वयं की चेतना और स्वयं के अस्तित्व की रक्षा के लिए प्रतिकार करना या चिंतन करना आवश्यक होता है । अतः चंतारा का प्रतिकार समाज के हर वर्ग की जागरुक महिला का प्रतिकार है यह आदर्श प्रतिकार की श्रेणी में रखा जाना चाहिए । नारी को अपने अस्तित्त्व के लिए स्वयं ही लक्ष्मीबाई बनना पड़ेगा । अपनी आवाज स्वयं बनना है । मर्दवादी सोच में परिवर्तन के लिए व नारी अस्तित्व की रक्षा के लिए नारियों में चिंतनप्रतिकार व जागरुकता आवश्यक है ।

4.2 शीर्षक क्या दूँ ? :

प्रस्तुत कहानी में तीन प्रमुख पात्र हैं । हरीतिमा जो कि लेखिका भी है । उसकी सहेली सुदेशना जो पाश्चात्यवादी विचारों की पोषित नारीवादी लेखिका है । हरीतिमा भारतीय विचारोंवाली है । दोनों की कॉलेज के बाद प्रथम मुलाकात एक रेस्टोरेन्ट में होती है । कॉलेज के बाद दोनों अपनी जिन्दगी में घटी सभी घटनाओं की चर्चा करती हैं । हरीतिमा अपने बच्चों व पति से मिलाती है और सुदेशना भी अपनी जिन्दगी के उतार चढ़ाव व-परिवर्तन पर बात करती है । तीसरी प्रमुख पात्र है मैनावती जो कि पिछली बार की सक्रिय रहते हुए आज महिला मुक्ति पर प्रेस को संबोधित करने वाली है ।

कहानी का मसला पूर्णरुपेण नारीमुक्ति से संबंधित है। हरीतिमा की संपादक के साथ बाता उस पर संपादक ,कहनी हो जाती है क्योंकि हरीतिमा ने जो लेख लिखा है--कहता है कि

बस थोड़ी बोल्डनेस की कमी है।"बोल्ड लेखन करिए देखिए रातोंरात आप , "साहित्य जगत की चर्चित लेखिका बन जायेंगी ।[1]

इन सब बातों को सुनकर हरीतिमा अपना लेख वापस माँग लेती है। हरीतिमा असमंजस में है कि बोल्ड लेखन क्या होता है। बलात्कार पर बोल्ड लेखन में क्या होगा। बोल्डनेस का हिन्दी मतलब है साहसी या साहसीपन और बलात्कार में बोल्ड लेखन का मतलब सम्पादक को चटखारेदार शैली में बलात्कार की रिपोर्ट चाहिए ताकि लोग उसे पढ़े, दुराचार में इस तरह पुरुष की ऐसी मानसिकता है की उस दुर्व्यवहार की समस्त छोटी-छोटी घटनाओं को स्वाद लेकर पढ़ें। ऐसे लेख लिखने का मतलब, उसी का दूसरा बलात्कार करने जैसा है। यदि भ्रष्टाचार को उजागर करने के लिए भ्रष्टाचार करना पड़े तो यह, अच्छा नहीं है। अतः सम्पादक के साथ लेखिका की कहा-सुनी पितृसत्तात्मक अवधारणा के खिलाफ एक प्रयास है। ऐसी घटनाओं में तो पीड़ित बहुत परेशान रहता है। घटनाक्रम की सभी छोटी-बड़ी यंत्रणा को मसालेदार ढंग से प्रस्तुत करना ताकि पुरुषवर्ग हर्षित होकर उसे पढे, संपादक के पाठक बढ़े, मसलन कि गुना, गुनाह न होकर एक पाठक बढ़ाने का साधन हो गया, पीड़िता क्या एक साधन मात्र है? महिला है तो क्या वह एक वस्तु है, बस। ऐसा नहीं होना चाहिए। पितृसत्तात्मक समाज में महिला को वस्तु की तरह देखने की एक परम्परा है, इसी वजह से महिलाओं की हर उपादान को पुरुष वर्ग अपने हितार्थ प्रयोग करता रहता है। पुरुष वर्ग महिलाओं को अपने आर्थिक, सामाजिक, राजनीतिक स्वार्थों के लिए साधन की तरह ही देखता है।

ऐसे भी सम्पादक हैं जो पीडित महिला के दुर्व्यवहार व अन्याय को एक महिला लेखक से चटपटा लेख लिखवाकर अपने पाठकों की संख्या बढ़ाना चाहते हैं। तो जैसे हरीतिमा ने संपादक के इस मंसूबे को जानकर ऐसा करने से इनकार कर दिया ,

इसी तरह का इंकार महिलाओं को अपने हित के लिए करना चाहिए । विमर्श का चिंतन मिलकर करना चाहिए । यदि गलत परम्पराओं का प्रतिकार सामूहिक रुप से होगा तो नारीमुक्ति का आगाज संभव है ।

लेखिका अपनी सहेली सुदेशना के नाम पर आज-कल की चर्चित लेखिकाओं की अश्लीलता परोसते हुए साहित्य रचनाशीलता को प्रतिबन्धित करने की बात कहती है । जैसे कि नये-नये रचनाकार अपना साहित्य में चटखारे लेकर पढ़ने वाले सन्दर्भों पर अधिक ध्यान से लिखते हैं । ऐसे लेखक विक्रय के रिकार्ड से चर्चित हो जाते हैं । और जो लेखक साहित्यिक औचित्य पर ध्यान नहीं देता, जिससे अच्छे साहित्य के मुकाबले में नकली या चटखारे वाला साहित्य अधिक चर्चित हो जाता है और इससे अच्छे साहित्य का प्रसार नहीं हो पाता है ।

शीर्षक क्या दूँ‘? ’ कहानी में नारी मुक्ति से सम्बन्धित विभिन्न सवालों या मुद्दों को उठाया गया है । वो भी घटनाओं को रचकर । हरीतिमा की मुलाकात एक दिन रेस्टोरेन्ट में उसकी कालेज की दोस्त सुदेशना से हो जाती है । हरीतिमा उससे उसके वैवाहिक जीवन के बारे में पूछती है तो वह बताती है कि कॉलेज की जो योजना थी वह फलीभूत नहीं हुई। मैंने किसी दूसरे से शादी कर ली है । जब हरीतिमा ने कारण जानना चाहा तो उसने बताया कि-

साथ मन आई मीन माइंड को भी किसी के पास गिरवी रखने-मैं तन के साथ“ यह कैसी ,पर जी न सकू ,आखिर फेमिनिस्ट थीयरी को मैं लिखूँ तो ,को तैयार न थी ”विडंबना है ।[2]

नारी मुक्ति आन्दोलन का एक महत्त्वपूर्ण मुद्दा है और अत्यन्त आधुनिक जिसे लिव   इन कहते हैं । भारतीय परिप्रेक्ष्य में- देखें तो लिव इन अच्छा नहीं माना जाता ।- इस व्यवहार को भारतीय संस्कृति की सुचिता के लिए वर्जित माना जाता है । परन्तु भारतीय चिंतन की नहीं । इसलिए उसके जीवन ,सुदेशना पाश्चात्य चिंतन की समर्थक है

की समस्त घटनाओं में पाश्चात्य मुद्दों को लेखक ने बड़ी बारीकी से उठाया है । असल में पौराणिक काल में यदि देखें तो कई कहानियों या साहित्य के अध्ययन में यह है कि स्वयंवर आदि का आयोजन होता था । वैदिक काल मे व बाद के कालों तक धार्मिक रचनाओं तक में औरतों को स्वेच्छा से जीवन साथी चुनने का मौका मिलता था । परन्तु मध्यकाल में विदेशी आक्रमणों व आक्रान्ताओं से दूषित मध्यकाल की संस्कृति का प्रभाव आधुनिक काल में भी है । भारतीय परिप्रेक्ष्य में यदि देखें तो मध्यकाल को छोड़कर हमेशा नारियों के लिए जीवनसाथी चुनना स्वयं का अधिकार होता था । मध्यकाल का असर ही है जो भारतीय संस्कृति पर है । पर्दा रखने का जो उपक्रम है वह मध्यकाल के शासनकाल से ही हुआ । मुस्लिम शासनकाल में ही पुरानी भारतीय जीवन पद्धति में विकृति आयी जिसमें औरतों , को अपनी प्राचीन जीवन पद्धति में बदलाव करके पर्दाप्रथा का चलन करवाया गया । ,रखना पड़ता था । मध्यकाल की पर्दा प्रथा के कारण ही भारतीय संस्कृति प्रभावित हुई जिससे भारतीय संस्कृति में खास कर महिलाओं पर कई पाबंदियाँ बनने लगीं । जिसमें होता है । नारी की इच्छा पर विचार नहीं किया जाता था ।

और यही मानसिकता भारतीय नारी मुक्ति में है कि वैवाहिक सम्बन्ध के लिए परिवार के सदस्य ही पूर्ण मार्गदर्शन करते हैं । जिसके साथ सम्बन्ध जोड़ दिया वह नारी , का जीवनसाथी हो गया ।

परन्तु यहाँ पर सुदेशना जिस विचार या मानसिकता की है वह नारी मुक्ति की भारतीय परम्परा नहीं पाश्चात्य परम्परा की मानसिकता है । जहाँ पर पति व पत्नी में , -कोई अन्तर नहीं है । सुदेशना बताती है कि

अपने ढंग से ले लेते है । शाम को कुछ-अब ज्यादातर हम दोनों लंच अपने“ बना लेते हैं । ”[3]

सुदेशना का जीवन नारीमुक्ति के पाश्चात्य विचार से पोषित है। वह अपने जीवन यापन में पति व पत्नी के बराबर व्यवहार की हिमायती है। उसकी बातों से ही लगता है कि दम्पत्ति एक दूसरे के सहयोग में रहते हैं-दूसरे के बन्धन में नहीं होते। एक-पति के सामन्जस्य-इसका जवाब सुदेशना देते हुए पत्नी ? है कि घर से खा कर नहीं आयी अपने हिसाब से कर लेते-को दिखाते हुए बताती है कि दोनों नौकरीवाले हैं। लंच अपने हैं।

कहने का मतलब है कि समाज की जो व्यवस्था है दाम्पत्य जीवन की वो आपसी सामन्जस्य से चले तो जीवनरुपी गाड़ी सुचारु रुप से प्रगति करे। दोनों का बराबर अधिकार है। एक पितृसत्तात्मक सोच से न देखें तो ,दूसरे के अधिकारों का ध्यान रखें--परिवाररुपी संस्था प्रगति में बाधक नहीं है। सुदेशना के मुताबिक वह दोनों पतिपत्नी आदर्श परिवार है। यदि इसी तरह दम्पत्ति रहें तो हर परिवार में महिला को समान अवसरों की प्राप्ति हो। वह भी दलित जैसा वर्ग न बने। नारी मुक्ति तभी हो सकती है जब समाज की सबसे छोटी इकाई परिवार में नारी की स्थिति अच्छी होगी। नारी की दयनीय स्थिति पर यदि परिवार जैसी संस्था से ही सुधार हो तो निश्चय ही परिणाम अच्छा ही होगा।

सुदेशना का व्यवहार भी सरल ही है। हरीतिमा के बच्चे जब उसका पैर छूते हैं तो वह मना करती है कि हाथ मिलाओ। क्योंकि सब बराबर होते हैं। ,पैर न छुओ - भारतीय संस्कृति में बड़े के अभिवादन में पैर छूते हैं। जबकि पाश्चात्य संस्कृति में हाथ मिलाकर अभिवादन करते हैं जो कि बराबरी का भी माना जाता है। पाश्चात्य चिंतन में नयी व्यवस्था बनाकर बराबरी का भाव रखना अच्छा माना जाता है।

प्राकृतिक व्यवस्थानुसार बच्चे पैदा करना तो नारी का ही काम है। परन्तु इस प्राकृतिक व्यवस्था में पितृसत्ता ने अपना आधिपत्य जमा लिया है। मतलब कि बच्चे तो नारी ही पैदा करेगी, परन्तु नारी का सिर्फ शरीर ही रहेगा, उसकी मर्जी नहीं।

"दुनिया की आधी आबादी नारियों से सुशोभित व संपन्न होती है , पर बड़े दुख के साथ, विडम्बना व पीड़ा की बात यह है कि इन पर राज पुरुषों का रहा है। नारीवाद / स्त्री विमर्श यह आज की कहानी नहीं, बरसों से चली आ रही आँसूओं की अविरत धार है जिसमें पाश्चात्य नारियों के आँसू भी हैं और भारतीय नारियों के भी।"[5]

सुदेशना स्त्री मुक्ति के विचारों की पोषक है। वह एक लेखिका है जो स्त्री मुक्ति की मुहिम पर है। वह कहती है कि नारी मुक्ति पर मैं लिखती हूँ और इसको मैंने जीवन में उतारा भी है। पश्चिम के सभी देशों की महिलाएँ हों या पूर्व के देशों की सभी महिलाएँ , नारी मुक्ति की आवश्यकता सभी को है।

जब हरीतिमा पूछती है कि तुम लोग बच्चे नहीं चाहते, ऐसा क्यों? यह सवाल हरीतिमा का था। हरीतिमा जिस संस्कृति का अनुसरण करती है, उसमें बच्चे पैदा करना एक नारी का उत्तम कर्त्तव्य माना जाता है और जब तक औरत माँ नहीं बनती तब तक वह अधूरी मानी जाती है। परन्तु आधुनिक युग में माँ बनने में औरत के लिए पाश्चात्य विमर्श के कारण थोड़ी-सी सहूलियतमिलने लगी है। जब साधिकार हरीतिमा उसे डाँटती है तो वह कहती है कि-

वो बच्चे होंगे तो लेखन में व्यवधान होगा। फिर वैभव भी नहीं चाहते। हम" वैभव तुमसे मिलकर प्रसन्न ,कभी आओ ,दोनों के बीच एक अच्छी अंडरस्टैंडिंग है हरीतिमा ।"[5]

सुदेशना की ये बातें सुनकर हरीतिमा आश्चर्य में पड़ जाती है। लेकिन सुदेशना के लिए ये सामान्य बात है क्योंकि वह उत्तर आधुनिक विचारों से युक्त है। स्त्री मुक्ति तभी हो सकती है कि नारी जो भी करे स्वेच्छा से करे। चाहे वो भारतीय विचारों की हो या पाश्चात्य। जहाँ भी नारी है देश विदेश हर स्थान पर उसकी स्थिति दयनीय है। उसे-

कहीं भी वह आधुनिकता से पोषित ,का जितना भी जीवन इस कहानी में दिखाया गया है खुशी जीवनयापन कर रही-विचारों वाली नारी से कमतर नहीं है । अपने जीवन में खुशी है । ऐसा इसलिए कि वह भी बौद्धिक रुप से मजबूत है । स्त्री मुक्ति विचारों से वह पूर्ण परिचित है । हरीतिमा स्वतंत्र हैस्वच्छंद नहीं है । ,

तभी तो उसकी सहेली का 'अंडरस्टैंडिंग' शब्द उसके लिए हास्यास्पद हो जाता है कि विवाह है फिर भी बच्चे नहीं करोगे, क्योंकि बच्चे लेखन कार्य में बाधक हो जाते हैं । जबकि हरीतिमा का मानना है कि बच्चों का प्रेम ऐसा होता है कि कितने कवियों ने वात्सल्य पर कविता लिख दी है । या ऐसे कहें कि बच्चों की मासूमियत ने कितने अहृदयी लोगों को कवि बना दिया । लेखन कार्य भावनाओं का है । बच्चों की वजह से कवि या लेखक की भावनाएँ विकसित होती हैं न कि संकुचित होती हैं ।

इस सम्पूर्ण कहानी में पुरुष पात्रों पर पितृसत्तात्मकता का प्रभाव नहीं है । सुदेशना के पति हो या हरीतिमा के मुक्ति के खिलाफ नहीं-कभी भी दोनों के विचार स्त्री , हैं । दोनों पक्षों में पाश्चात्य व भारतीय विचारों वाली स्त्री में पुरुष वर्ग से कोई नकारात्मक तथ्य नहीं है । दरअसल लेखक यह दर्शाना चाहता है कि महिला किसी भी देश में हो स्त्री मुक्ति तभी संभव है जब पुरुष वर्ग भी सकारात्मक ,काल या परिस्थितियों में हो , मुक्ति आन्दोलन में पुरुष वर्ग भी पूर्ण सहायक होता है । यदि उससे ठीक से-रहे । स्त्री सामन्जस्य बनाकर या सामन्जस्य का सामान बनाया जाये तो इस आन्दोलन को सफल बनाया जा सकता है ।

पुरुष वर्ग ने नारी मुक्ति पर आदर्श विचार प्रस्तुत किए है । यदि यही विचार सभी समाजों के सभी पुरुषों के हों तभी नारीमुक्ति सामन्जस्य के साथ पूर्ण हो सकता है । हरीतिमा के पति का कथन ऐसा लगता है कि जैसे वह पाश्चात्य व भारतीय दो सन्दर्भ की नारियों से कहना चाहता है कि-

सी लग गई है । हमारे सहयोग को-ओफ् तुम दोनों को तो संदेह की बीमारी" भी शक की ही दृष्टि से देखती हो । महीने में अट्ठाईस दिन तुम मुझे सहयोग करती हो तो

क्या एक दिन भी हम करने लायक नहीं है अरे हम लोगों की भी मानसिकता अब बदल ? ”साथ ।-रही है । तुम लोगों के साथ[6]

कहानी के अगले हिस्से में तीनों महिला पात्रों में स्त्री मुक्ति आन्दोलन पर-चर्चा होती है । जो पात्र जिस विचार का पोषक है वह उसी तरह की बातें बोल रहा था । जैसे सुदेशनाने बताया कि किचेन बहुत दिनों से नारियाँ ही सम्भालती आयी हैं। जबकि पुरुष को भी किचेन में बराबर का कार्य करना चाहिए । ऐसे ही विचार मैनावती के भी थे , परन्तु अपरिपक्व थे ।

ये बातें हरीतिमा को अखर रही थीं । उसके विचार से तो पति ऑफिस सम्भालता है तो पत्नी को किचन सम्भालना चाहिए ।

कहानी के अन्त में लेखिका विचार करती हैं कि“ -पुरुषत्व को ओढ़ने पर स्त्री किस तरह विद्रुप हो उठती है । दृष्टियों का पात्र बनने को अपनी सफलता मान लेना उस कौतूह की तरह है जिससे लोग सर्कस में करतब दिखाते कलाकारों को देखते हैं । सबका अपना एक विशेष स्वरुप प्रकृति प्रदत्त है । उसमें परिवर्तन होना तो चाहिए पर उलटवासी , ”नहीं ।[7]

इन पंक्तियों से स्पष्ट है कि नारी मुक्ति का आन्दोलन आधे-अधूरे प्रयासों से सफल नहीं होगा । समाज के दोनों वर्ग स्त्री और पुरुष किसी भी सकारात्मक चिंतन के लिए यदि अलग-अलग प्रयास करें तो सफलता नहीं मिल सकती है । समाज में सुधार करने के लिए सभी सामाजिक प्राणियों की सोच में सकारात्मकता आवश्यक है । नारी हो या पुरुष दोनों को यह समझना पड़ेगा कि नारी मुक्ति एक दूसरे के बिना अधूरी है । पुरुष चाहता है कि वह समाज में श्रेष्ठ माना जाता है तो उसकी वह स्थिति बनी रहे, परन्तु पुरुष को पितृसत्तात्मक सोच से बाहर निकालकर यदि ज्ञान कराया जाये तो वह निश्चय ही सकारात्मक सहयोग जरुर करेगा । उसी प्रकार महिला भी यदि स्त्री-मुक्ति के लिए पुरुष वर्ग को प्रतिद्वन्द्वी न मानकर, उसे नारी समाज की भलाई व उन पर हुए अन्याय को समझाया जाय तो निश्चय ही पुरुष वर्ग भी स्त्री-मुक्ति आन्दोलन में सहयोग देगा ।

4.3 उष्ट्र उष्ट्र ही सही

विद्योत्तमा एक पढ़ी लिखी कामकाजी महिला है जिसने प्रतियोगी परीक्षा-देकर नौकरी प्राप्त की है। उसके परिवार में पिता की असमय मृत्यु हो चुकी है। माँ है, छोटी बहन है व एक छोटा भाई है। बहन की शादी दो साल पहले ही कर दी गई है। भाई प्रतियोगी परीक्षा की तैयारी में व्यस्त है।

माँ की चिन्ता है कि वह अपनी भी शादी कर ले। विद्योत्तमा की उम्र भी 45 की हो चुकी है। परन्तु उसकी मंशा है कि पहले परिवार को प्राथमिकता देगी। मतलब कि अपने परिवार को वह छोड़ना नहीं चाहती। उसकी माँ ने कई रिश्ते देखे पर कोई भी सफल नहीं हो सका।

सभी रिश्ते पितृसत्तात्मक मानसिकता के थे जबकि शिक्षित व समझदार आधुनिक विद्योत्तमा को प्राचीन काल के कालिदास स्वीकार्य नहीं थे। वह आधुनिक विद्योत्तमा हैकिसी गलतफहमी में नहीं रहती है। ,

समाज में कोई भी महिला तो पितृसत्ता यह ,यदि प्रगति करते हुए सफल रहे , सोचती है कि इसकी सम्पत्ति मिले या यूं कहें कि वह उसको अपनी सम्पत्ति की तरह परन्तु विद्योत्तमा की सोच एक आधुनिक नारी की थी। वह चाहती थी कि नारियाँ सिर्फ शादी के बाद एक परिवार की नहीं रहती उसके पास दोनों परिवार होने चाहिए। उसका , माँ ,उससे पहले मैं अपने परिवार को ,स्वयं का निर्णय है कि जिससे भी मेरी शादी होगी कोव छोटे भाई को स्थान दूँगी। यही बात पुरुषों को अखरती थी।

विद्योत्तमा की मानसिकता परम्परागत रीतिरिवाज विवाह आदि , पितृसत्तात्मक संस्कृति से अलग थी। उसका मानना है कि नारी की पहचान पति के साथ बल्कि अपनी स्वयं की होनी चाहिए। नारी सिर्फ सृजन कार्य छोड ,ही नहीं़कर नये परिवार में शामिल हो जाये। उसकी खुद की पहचान नयी हो जायेगी। वह नये नाम व

नये सम्बन्धों के आधार पर जीवनयापन करेगी । परन्तु विद्योत्तमा का व्यक्तित्व पूर्ण नारी सशक्तिकरण को परिभाषित करने वाला है । वह स्वयं की पहचान को खोना नहीं चाहती है । अपनी माँ को और परिवार को छोड़ना नहीं चाहती है ।

प्राचीन काल की विद्योत्तमा से प्रतियोगिता न कर पाने वाला विद्वत् समाज उसके खिलाफ रहता था । इसी वजह से तत्कालीन बुद्धिजीवी विद्योत्तमा की शादी मूर्ख कालिदास से करवा देते हैं और विद्योत्तमा भी कालिदास को अधूरा ही परखकर शादी कर लेती है । परन्तु कालिदास भी यदि परम विद्वान व महाकवि बने तो उसमें विद्योत्तमा का पूर्ण सहयोग रहा था । विद्योत्तमा के कारण ही कालिदास मुर्ख से विद्वान बने ।

विद्योत्तमा के कार्यालय में भी दुर्जन बन्धु भी उसकी ईमानदारी की वजह से दुश्मन बन गये थे । कई बार कार्यालय के भ्रष्टाचार की खबरें यदि प्रचार पा जाती थी तो इसके लिए अपराधी विद्योत्तमा को ही माना जाता था । सब लोग विद्योत्तमा को ही पीडित करने का प्रयास करते थे। ठीक कालिदास की विद्योत्तमा की तरह ही । परन्तु आधुनिक काल की विद्योत्तमा को ऐसे प्रताडित करना आसान नहीं है ।

विद्योत्तमा न ही भ्रष्टाचार में दोषी थी और न ही करती थी । परन्तु लोगों ने सरकारी दफ्तर को काजी हाउस बना रखा है । इसीलिए सहकर्मी विद्योत्तमा को अपना दुश्मन समझते थे । वे हमेशा उसे कलंकित करने के लिए तैयार रहते थे।

चरित्रहीनता नारी के खिलाफ इस्तेमाल करने के लिए पुरुषों के पास एक अचूक अस्त्र है जिससे पितृसत्ता हमेशा विजय प्राप्त करती है । नारी जगत को पुरुषों के इस शस्त्र से सावधान रहना चाहिए ।

एक घटना - विद्योत्तमा कैसे परेशान होती है और भ्रष्टाचारी व पितृसत्ता के लोग कैसे एक नारी को सबकी नजरों में गिराकर उसे परेशान करते हैं । ठीक वैसे ही जैसे प्राचीन काल की विद्योत्तमा को प्रताड़ित करने के भाव से उसका विवाह एक मूर्ख से करा देते हैं । वैसे ही इस विद्योत्तमा को प्रताड़ित करने के लिए कार्यालयी कार्यक्रम मंचन के कार्यक्रम में विद्योत्तमा दमयंती का किरदार निभा रही थी, और सहकर्मी प्रशान्त नल का । नल दमयंती के प्रणय

दृश्य को देखकर और निर्देशक आदि सहकर्मी द्वारा कान भरे जाने के कारण प्रशान्त की पत्नी द्वारा विद्योत्तमा का चरित्रहरण किया गया।

पितृसत्तात्मक सोच वाले लोग प्रशान्त की पत्नी को अपने झूठे जाल में फँसाकर एक नारी को नारी के द्वारा प्रताड़ित करने में संलग्न थे। जैसे प्राचीन काल में विद्योत्तमा को प्रतियोगी विद्वानों ने साजिस करके प्रताड़ित करने का झूठा प्रयास किया था उसी तरह से आज की विद्योत्तमा भी प्रताड़ित हो रही है।

विद्योत्तमा की एक सहेली है अपर्णा जिससे वह अपनी उलझनों या परेशानियों पर बात करती है। अंत में प्राचीन विद्योत्तमा औऱ आज की विद्योत्तमा में फर्क करना मुश्किल हो जाता है। तो प्राचीन विद्योत्तमा की ही तरह समाधान निकालने की कोशिश करती है। वह कहती है कि -"चाह रही हूँ कि कहीं से वह कालिदास ही आ जाए और कुत्तों की इस भीड़ में मुझे देखकर चिल्ला पड़े... उष्ट्र - उष्ट्र...। उसकी अल्पज्ञता को नकार मैं नतमस्तक हो जाऊँगी। उसी कालिदास के चरणों में। बस... कम से कम मेरा मूल स्वरुप तो स्पष्ट है।"[8]

इसी तरह ही समाज की बुराईयों की वजह से नारी सशक्तिकरण की महिलाओं की सारी कोशिश अधूरी रह जाती हैं।

4.4 हव्वा

हव्वा कहानी आत्मकथात्मक है और कुछ फ्लैशबैक शैली में चलती है। हव्वा कहानी की नायिका नैना है जो तीस-बत्तीस साल की आकर्षक शादीशुदा व सरकारी कार्यालय में अधिकारी पद पर है। लेखिका प्रारम्भ में ही बता देती है कि नैना हो या अन्य कोई कार्यालय में काम करने वाली महिला, वह स्थिर धरती की तरह होती है। और पुरुष सहकर्मी समुद्र की भाँती होते हैं जिनकी लहरें बार-बार किनारे को छूना चाहती हैं। चाहे वह किनारा कैसा भी हो। नैना आकर्षक व्यक्तित्व की है। अच्छी लम्बाई व सुदृढ़ शरीर वाली व हसमुख है। नैना की आँखे ऐसी है जैसे उसके हँसने से पहले ही उसकी आँखे हँस

देती हैं । वह कार्यालय में सबसे बात करती है । इसके इस स्वभाव के कारण लोग नैना को गलत समझ लेते हैं । पर नैना को इसकी परवाह नहीं है । वह इन सब बातों को नज़रअंदाज कर देती है । वह बहिर्मुखी है । परन्तु बहुत तीक्ष्ण नहीं है । सहज स्वभाव की है । उसके दो बच्चे हैं और पति अरुण भी अन्य कार्यालय में अधिकारी है । अरुण का दोस्त पवन भी नैना के ऑफिस में कार्य करता है । इसी ऑफिस में राकेशजी हैं जो कि कभी कॉलेज में नैना के सीनियर रहे हैं । परन्तु नैना के बड़े पुराने दोस्त व सहपाठी बताकर अपनी प्रशंसा करते हैं ।

इन्हीं सब दुर्गुणों के कारण नैना अपने कार्यालय में परेशान रहती है । राकेश हो या चीफ साहब सब नैना को हमेशा साध ने में लगे रहते हैं यह जाने बिना कि नैना , कितना उन्हें पसंद करती है । यहाँ तक की चीफ साहब की पत्नी सुकल्पा भी बताती है कि च ीफ साहब घर पर भी नैना तुम्हारी बहुत तारीफ करते हैं जबकि सुकल्पा की यह बात नैना को अच्छी नहीं लगी । परन्तु वह अन्दर ही अन्दर कुढ़ कर रह गयी ।

एक दिन ऑफिस में शाम को जब नैना निकल रही थी तो पवन नैना से पेन माँगने के लिए आया । दोनों को साथ देखकर बॉस अजीब नजरों से देखने लगे थे और द्विअर्थी बातें बोलकर चल देते हैं जिससे पवन व नैना दोनों जल भुन जाते हैं । पवन जो नैना का ऑफिस में काफी सहयोग करता है कारण वह नैना के पति के दोस्त भी है । , बताता है कि -

सुथरी-नारी की इज्जत आईने की तरह होती है नैना जी जिस पर साफ" पर ,उंगलियों के भी निशान स्पष्ट हो जाते हैं । आप दिल से बेशक बहुत अच्छी हो नैना जी इतनी सहज मधुर भी मत बनिए कि लोग आपको बहुत सुलभ समझ लें ।[9]"

नैना पवन के साथ ज्यादा घुली मिली है । वह कार्यालय के काम या समस्या-में सिर्फ पवन का ही सहयोग लेती है । चाहे बॉस के कैबिन में नैना का जाना हो या कुछ

पवन ही उसे इन समस्याओं से उगारा करता था। नैना को यह महसूस होता है कि ,और कार्य ालय के सभी लोग उसे ललचाई नजरों से देखतें हैं। यह सब समाज के भेड़िए हैं। पवन के सिवा बाकी सब शिकारी लगते हैं।

चीफ साहब ही वह इंसान है जब पवन व नैना को साथ देखकर नैना के पति को भी फोन करके उल्टी सीधी बातें फैलाए हुए हैं जिससे नैना के पति अरुण आज क्रोधित-होकर नैना से पूछते हैं कि एक गुमनाम फोन आया था कह रहा था कि तुम्हारा पवन के , साथ चक्कर है। तब नैना बताती है कि यह फोन कौन और क्यों कर सकता है। नैना समझाते "? क्या तुम विश्वास कर सकते हो अरुण" हुए कहती है किदर असल नैना के स्वभाव पर अरुण को विश्वास है। वह खुद नैना को समझाता है और साथ देते हुए बताता है कि" -नहीं , परंतु मैं भी तो समाज का एक अंग हूँ। मुझे भी अपनी ,मुझे तुम पर पूरा विश्वास है तुम्हारी ओर कोई ,नई नौकरी में आई हो-नई ,बदनामी से डर लगता है। तुम अभी यंग हो भी आकृष्ट हो सकता है। नाकामयाब होने पर क ुछ नहीं तो बदनाम तो कर ही सकता है। फिर एक लड़की के साथ नाम जुड़ना अकसर पुरुषों को अंदर से गुदगुदा जाता है।[10]"

सही है किसी भी नारी को यदि पराजित करना हो तो उसे चरित्रहीन ठहरा , देना पुरुष वर्ग के लिए किसी विजय स्तम्भ जैसा ही है।

पितृसत्तात्मक समाज का सबसे सशक्त हथियार चरित्रहीनता ही है जिससे नारी की विश्वसनीयता खत्म हो जाती है।

औरत को परास्त करने का सबसे आसान हथकंडा और हथियार है चरित्र" पर लांछन। ऐसी गालियाँ व लांछन स्त्री की चरित्रहीनता का पर्याय होते हैं। इन हथियारों [11] "का प्रयोग पुरुष सदैव करते आए हैं।

पितृसत्तात्मक व्यवस्था के तहत समाज की यह मानसिकता बन गयी है कि स्त्री से किसी भी कीमत पर हारना उसे स्वीकार नहीं है। यदि खुद की पराजय हो और स्त्री की विजय हो तो यह बात पितृसत्ता की मानसिकता को सहन नहीं होती है। इसके लिए पुरुष स्त्री पर लांछन लगा देता है। इस लांछन के लिए रमणिका गुप्ता ने एक गाली को

मुखर रुप में बताया कि रंडी शब्द ही पुरुषों को खूब भाता है । इस शब्द से नारी की पवित्रता पर सबको संदेह हो जाता है। वह बदचलन की श्रेणी में आ जाती है जिससे पुरुष वर्ग अपने को विजयी महसूस करता है । इससे बचने के लिए रमणिकाजी ने औरतों को गालियों पर प्रतिकार करने की बात की है कि कभी भी औरतों को गाली पर स्वीकारोक्ति नहीं देनी चाहिए।

नैना एक सवाल उठाती है और सफाई में कहती है कि" -इसमें मेरा दोष कहाँ है बता दो वह भी तो सम्भव नहीं ,ऑफिस में किसी से एकदम बात न करुँ ? है। फिर किसी के अन्दर कौनइसके लिए मैं स्वयं को कैसे दोष दूँ। ,सा गुनाह कब जन्म ले रहा है-

हर क्षण कांशस रहती हूँ अरुण। लेकिन कैसी विडंबना है कि आज भी नारी की थोड़ी-सी उदारता और पारंपरिक रुढ़ियों से परे कदम रखना अग्नि परीक्षा का कारण है, और पुरुषों द्वारा इसका जायज-नाजायज लाभ उठाना उनकी लीला है । कब स्वीकार्य होगा सह-अस्तित्व?"[12]

इस पुरुष प्रधान समाज में पुरुष ने सारे मापदण्ड अपने हिसाब से तय किए हैं। खुद तो सृष्टि का मालिक बन गया है और नारी को दूसरे दरज्जे का मानता है। जबकि नारी का स्थान बराबरी का होना चाहिए क्योंकि दाम्पत्य जीवन रुपी नौका की असली मांझी तो स्त्री ही होती है। परन्तु पुरुषवादी समाज उसे उसके कार्य बराबर होने पर भी अधिकार व सम्मान बराबर नहीं देता है । नारी कितना भी सावधानी से रहे, पुरुष उसे कुछ न कुछ लांछन लगाकर अपने से कम ही आंकता है। नैना भी इन्हीं सब बातों से परेशान होकर अरुण से ही नहीं पुरे समाज से ही सवाल करती है कि नारियों को कब मिलेगा पुरुषों के बराबर अधिकार ?

नैना का यह सवाल कि पुरुषों की तरह नारी को सह-अस्तित्व कब मिलेगा ? यह सवाल सभी पितृसत्तात्मक मानसिकता वाले पुरुषों से है कि चरित्रहीनता के हथियार से नारी को कब तक पराजित करते रहोगे ? और चरित्रहीनता का आरोप स्त्री पर ही क्यों

चलता है ? नारी की इज्जत ठीक आइने की तरह हो गयी है जिस पर साफ़-सुथरी उंगलियों के दाग भी स्पष्ट हो जाते हैं ।

वैदिक समय की स्त्री-दार्शनिक गार्गी तथा मैत्रैयी की सूचनाएँ पुनरावृत्ति में मिलती हैं । बताया जाता है कि वैदिक काल से लेकर उपनिषद काल तक समाज में स्त्रियों का समान स्थान था । इसके बाद, स्मृति समय से लेकर इस स्थिति में परिवर्तन होने लगा और तब से लेकर भारतीय समाज मर्दवादी होता गया । पितृसत्तात्मक होता गया, मानसिकता स्थायी होती गयी । पुरुषों की मानसिकता पितृसत्ता से पोषित होते हुए नारी जगत को दूसरे ग्रह से आये हुए जैसा मानते हैं । नारी यदि अर्द्धनिद्रा में कोई बात कहे तो भी पुरुष उसे जिम्मेदार मानता है । जो कि एक परम्परा जैसी हो गयी है कि गलती हमेशा नारी की ही होती है । जैसे नैना की स्वप्न में कही हुई बात से अरुण नाराज हो जाता है तब वह आदम और हव्वा की कहानी चरितार्थ होती है कि आदम हव्वा को ही गलत बताता है । यह परम्परा आज भी चल रही है ।

4.5 इसलिए भी

'इसलिए भी' कहानी की नायिका कमली है जो एक निम्न मध्यमवर्गीय समाज की महिलाओं का प्रतिनिधित्व करती है । कहानी का ताना-बाना ऐसा है कि जिस किसी भी नजर से कहानी देखी जाये तो इसमें, एक औरत या एक लड़की की ही व्यथा है । किस तरह मर्दवादी सोच या पितृसत्तात्मक समाज में स्त्री अपनी अस्मिता के लिए संघर्षरत है । यह अस्मिता का संघर्ष साहित्य में भी दिखाई देता है । साहित्य की कई विधाओं में हम देख सकते हैं कि-

"नारी प्रश्न अपनी मूलभूत आवश्यकताओं के साथ विविध स्तरों पर उग्रतर होते जा रहे हैं । यद्यपि अभी नारी के स्वभावगत संकोच और चुप्पी को उसकी सहनशीलता का जामा पहना दिया जाता है, नारीत्व को संस्कारगत जड़ता में बाँधकर अनेक नियमों, परम्पराओं की अपेक्षा की जाती है, किन्तु सामाजिक मानसिकता और वर्चस्ववादी दृष्टि में नारी की

देहवादी छवि ही बनी हुई है। इस पूरी स्थिति के रुद्ध प्रतिरोधात्मक स्वर भी उठने लगे हैं। नारी ने स्वयं अपने अस्तित्व के प्रति, अपने स्वत्व के प्रति न केवल आवाज उठाई है बल्की अपने स्वार्थ, पारिवारिक हिंसा, अपने उत्पीड़न को भी कलमबद्ध करना आरम्भ कर दिया है।"[14]

उपरोक्त कथन से स्पष्ट होता है कि समाज की समस्त परम्परा, रीति-रिवाज, संस्कार की पूर्ण जिम्मेदारी नारियों पर ही है। परिवार व समाज के सारे नियम नारियों के लिए सारे बंधन होते हैं। बचपन से ही इन्हें बंधन में रहना सिखाया जाता है। शायद इन्हीं सब के कारण ही सिमोन ने अपनी पुस्तक में लिखा है "औरत पैदा नहीं होती बनाई जाती है।"[15] नारियाँ पैदा नहीं होतीं, उन्हें पैदा होने पर नारी बनाया या सिखाया जाता है। पुरुष और नारी को अलग-अलग बताया व सिखाया जाता है जिससे सारे अवसर पुरुष को दिये जाते हैं व सारे बन्धन महिलाओं को दिए जाते हैं। परन्तु महिलाओं में इन सब के प्रति प्रतिरोधात्मक बातें भी उठने लगी हैं।

उसी कड़ी में निरजा माधव की यह कहानी 'इसलिए भी' की नायिका कमली है, वह भी प्रतिरोध करती है अपने अस्तित्व को बचाने के लिए, परन्तु मर्दवादी सोच को समय पर बदल नहीं पाती है। उसके सपने टूट जाते हैं परन्तु कमली का संघर्ष आदर्श संघर्ष है। हर सामाजिक महिला का संघर्ष है। समाज में कमली की तरह ही सभी महिलाओं का संघर्ष है। कमली का संघर्ष किसी फैन्टसी जैसा नहीं है, बल्कि पूरी की पूरी जीवित स्त्री की तलाश है। पितृसत्तात्मक व्यवस्था के विरुद्ध चुनौती बनकर खड़ी होने वाली स्त्री ही भविष्य की स्त्री है। अतीत तो उसका सदियों का इतिहास है। जो उसके मान को संस्कारबद्ध करता है और लगातार झेले जाने वाले संघर्ष उन संस्कारों की जड़ता को तोड़ने की ओर अग्रसर हैं। अतः शिक्षा, आत्मनिर्भरता और आत्म-निर्णय जैसी स्थितियाँ उसे अपने अस्तित्व और सार्थकता के विषय में सोचने के लिए विवश करती है। कमली एक निम्न मध्यवर्ग की लड़की है। समाज का कोई भी वर्ग हो, उससे नारी समस्याओं में ज्यादा अन्तर नहीं पड़ता है। नारी की स्थिति हर वर्ग में समान ही रहती है। इसी संदर्भ में सुदेश बत्रा का कहना है कि-

स्त्री प्रतिरोध के अनेक स्तर हो“ते हैं। हम उसे सामान्यीकरण से नहीं समझ सकते । उच्च वर्ग सोच और क्षमता अलग होती है। ,निम्न वर्ग की स्त्री के तरीके ,मध्य वर्ग ,

यह मायने नहीं रखता कि नारी किस समाज से है । हर समाज में नारी का ,शोषण होता है और नारी अन्दर ही अन्दर घुंटती भी है । जैसे कमली निम्न वर्ग से है ,धर्म ,जति ,मरजात ,उसका सपना सीमित है । उसका लक्ष्य सीमित हैं जो कि समाज गरीब की इज्जत आदि बेड़ियों के कारण पूरा नहीं होता है । पितृसत्तात्मक सोच सिर्फ पुरुषों में ही नहीं होती बल्कि महिलाएँ भी इसका शिकार होती हैं । जैसे कमली की माँ । उसे , माँ अपनी बेटी की खुशी स्वयं भी नहीं देख पाती है । क्योंकि उस पर पित्रात्मक व मर्दवादी सोच का चश्मा लगा हुआ है । उसे अपनी बेटी की बातें भी सुनाई नहीं देती हैं । यदि नारी की उलझन कोई न समझे तो वह संशय में आ जाती है । उसकी हालत कमली जैसी हो जाती है ।

“कमली सिहर गयी थी । लल्लन को पता चलेगा तो वह क्या सोचेगा । उसके बारे में बड़ी सीता-सावित्री बनती थी । एक बार मन में आया था खुद ही जाकर सरयू में छलांग लगा दे ।”[17]

कमली के शरीर की आंतरिक गतिविधि के कारण जो गलतफहमी हुई उससे उसकी माँ बहुत ही क्रोधित हुई । कमली डर जाती है उसकी धड़कनें बढ़ जाती हैं। परिवार , में उसकी दशा ऐसी हो गयी थी कि उसकी अपनी माँ ही उसे जान से मार देगी । कहानी में अब माहौल गम्भीर हो गया था । एक तरफ कमली थी अकेले व दूसरी तरफ उसकी माँ के नेतृत्व में पूरा परिवार था । कमली परेशान होकर घर से निकल जाती है । उसे अपनी जान बचाने का वही एक तरीका लगता था ।

"कमली का दिल डर के कारण जोर से धड़क उठा था। माई चण्डी सी लग रही थी1"उसका तो जैसे गला ही सूख गया था। ...[18]

कमली को लेकर जिस तरह की गलतफहमी बन गयी थी परिवार में ऐसा लगता था कि कमली पर कोई घनघोर संकट आ गया है। यदि कमली घर से भागी न होती तो इज्जत व मरजाद के लिए उसके परिवार वाले उसे ही खत्म कर देते। औरत की चुप्पी को उसके संस्कार का नाम देने का समाज में आज भी प्रचलन है। इस पर प्रसिद्ध लेखिका अनामिका के विचार निम्न हैं-

"इतने युग बीत गये। औरत की और उसके कुल की भी इज्जत का पता नहीं बदला। वह उसकी मूक आज्ञाकारिता में ही आज तक निवेशित है। उसके गुडियापन में। जिस देश की सारी देवियाँ स्वयंवरा रही हैं, दाम्पत्य-सुख की पराकाष्ठा रुपायित करने वाली देवी पार्वती जहाँ अपने पिता से बगावत कर के एक सब-ऑल्टर्न किस्म के देवता से शादी कर लेने का आदर्श रखा है वहाँ ऑनर किलिंग? मैं तो यह मानने को भी तैयार नहीं कि एक बलशाली पशु के बीमार अंग से स्त्राव की कुछ बूँदे देह पर पड़ जाने से या उसके बलात् तन घर्षण से लड़की या उसके परिवार की 'इज्जत' चली जाती है। हादसे तो हादसे हैं। इनका इज्जत से क्या संबंध। इज्जत जाती है तो जबरदस्तियों से और पशुता से जैसे कि "ऑनर किलिंग" के साक्षात् विद्रूप से।"[19]

'इसलिए भी' कहानी में पारिवारिक दबाव इतना होता है कि कमली खुद की जान बचाकर घर से भाग जाती है। वर्तमान समय में भी समाज में इज्जत व मर्यादा का हवाला देकर अपनी संतान का सुख न देखकर उसे प्रताड़ित करते हैं। कभी-कभी नारी जगत पर मर्यादा हनन व चरित्रहीनता का आरोप लगाकर मर्दवादी सोच नारी जगत पर विजय प्राप्त कर लेती है। इस पर अनामिका की पुस्तक 'स्त्री विमर्श का लोकपक्ष' में फिराक साहब की पंक्ति है कि-

वे क्या इतना सोचे हैं ,जो हमके बदनाम करे हैं"

मेरा पर्दा खोले हैं कि अपना पर्दा खोले हैं ।"

फिराक गोरखपुरी की बातों में सच्चाई है। यदि सृष्टि की आधी आबादी अपनी पूर्ण क्षमता के साथ देश की प्रगति में सहयोग न करे तो उस देश की प्रगति संभव नहीं है। जैसे कहानी की नायिका कमली लल्लन को पसन्द करती है कि वह अपनी जिन्दगी के लिए कतवारु की बहू बनने से लाख गुना अच्छा बताती है। परन्तु पितृसत्ता व मर्दवादी सोचयुक्त उसकी माँ नहीं मानती है। उसे अपनी इज्जत व मरजाद ज्यादा प्यारी है अपनी बेटी से। वर्तमान समय की नारियों को पितृसत्तात्मक सोच वाले हिरण्यकशपुओं को जवाब देने के लिए रीति इज्जत व मर्यादा की होलिका को जलाना ही पड़ेगा। जिस ,परम्परा ,रिवाज- उस समय समाज के सभी नारी विरोधी ,दिन गलत परम्पराएँ व रुढ़ियाँ टूट गयीं हिरण्यकशपुओं को नारी की प्रतिभा व क्षमता का ज्ञान हो जायेगा।

यदि कमली के पात्र का साहित्य के अन्य प्रसिद्ध चरित्रों से मिलान करें, तो कमली प्रसाद के नाटक ध्रुवस्वामिनी जैसी सोच व स्तर की है जिसे क्लीव रामगुप्त जैसा खादिम नहीं बल्कि चन्द्रगुप्त चाहिए।

यदि इस कहानी को मोहन राकेश के नाटक 'अषाढ़ का एक दिन' के संदर्भ में देखें तो कमली व मल्लिका के संघर्ष में ज्यादा अन्तर नहीं है। जैसे मल्लिका कालिदास से विवाह करना चाहती थी परन्तु उसे विलोम से विवाह करना पड़ा। कालिदास उसे प्राप्त नहीं होते हैं और जब कालिदास उसके पास वापस आते हैं तब तक दोनों का बहुत कुछ लुट चुका था। उसी तरह कमली भी लल्लन को पसन्द करती थी परन्तु समाज, इज्जत व मर्यादा उसे लल्लन को प्राप्त नहीं करने देती है। और जब इन सामाजिक रुढ़ियों से उबरते हैं तब तक दोनों का संसार लुट चुका रहता है। सिवाय अफसोस के कुछ नहीं मिलता है।

4.6 तूफान आने वाला है

प्रस्तुत कहानी में नायिका ने एक वर्ग, सम्प्रदाय के जीवन स्तर पर कहानी कही है। यह कहानी आत्मकथात्मक शैली में कही गयी है। फ्लैशबैक शैली में कहानी है। नायिका का नाम है सीमा। जो कि रंजन से विवाहित है। गोवा के समुद्र के किनारे दोंनों

पति-पत्नी बात कर रहे हैं । नायिका बताती है कि उसकी माँ कैसे-कैसे बच्चों का पालन-पोषण करती थी । बच्चे अधिक हो जाने से मेरी माँ कमजोर हो गयी थी लेकिन पिताजी को मेरी माँ का कोई ख्याल नहीं रहता था । पिताजी अकेले कमाने वाले थे, तो घर में गरीबी थी । बड़ी मुश्किल से खर्च चलता था घर का । यदि माँ बच्चो की दवाई आदि के लिए कह देती तो वे झल्ला जाते । कभी-कभी वे इस अपराध की सजा भी माँ को दे देते । मुस्लिम निम्न घरों की नारी की स्थिति अत्यन्त दयनीय रहती है । इसी स्थिति का वर्णन रंजन के सामने करती है तो रंजन कहता है कि उन बातों को भूल जाओ, तब नायिका एक बात कहती है कि उन बातों कों कैसे भूल जाऊँ। वही तो मुझे बदलना है । मेरी माँ की पीढ़ियों ने जो अन्याय देखा है वह अन्याय मैं नहीं सह सकती । उसी अन्याय से मुक्ति दिलानी है मुझे । उसे मैं भूलना भी नहीं चाहती हूँ । अतीत सीखने के लिए होता है । उसी से सबक लेकर भविष्य बनाया जा सकता है । नारी को अपनी मुक्ति के लिए अपने अतीत को भूलना नहीं चाहिए । उसी अन्याय व शोषण के विरुद्ध आन्दोलन चलाना चाहिए । नायिका रंजन से कहती है कि मेरी जाति व धर्म में जो कमियाँ हैं उसे मैं निस्तारित करने के लिए कृत संकल्प हूँ ।

"नहीं, मुझे मेरा अतीत भुलाने को कभी न कहना रंजन । बल्कि तुमसे मेरी यही बिनती है कि मुझे हर दिन उसे याद दिलाते रहना । ... एक पल के लिए भी मैं उसे विस्मृत नहीं करना चाहती क्योंकि उसके साथ जुड़ा है मेरे जीवन व मेरी जाति का लक्ष्य । मैं तुम्हारी ऋणी हूँ रंजन कि मेरी लक्ष्य साधना में तुम मेरे अभिन्न सहयोगी हो।"[20]

उपर्युक्त कथन नायिका के हैं जोकि अपनी माँ के साथ हुए अन्याय के लिए एक संकल्प लेती है । जो संकल्प हर नारी को लेना चाहिए । क्योंकि नारियाँ हर गृहस्थी की जान होती हैं । सबसे सशक्त भूमिका गृहिणी ही निभाती है । सूरज उगने के पहले से लेकर देर रात तक कार्य करती है । इस काम का पूर्ण फायदा लेता है पुरुष । महिलाएँ तो शिकारे के नाव की माँझी ही रह जाती हैं । शिकारे का फायदा तो पुरुष ही उठाता है । वही पुरुष जिसे नारी ने ही जन्म दियाजिसकी परवरिश की , वही पुरुष बाद में नारी को ही कहता है

कि स्त्री किसी काम की नहीं होती है। पितृसत्तात्मक समाज की इसी सोच से ही तो महिलाएँ दूसरे दर्जे की मानी जाती हैं। और मुस्लिम समाज में तो महिलाएँ सबसे अधिक दलित व शोषित होती हैं। अन्य धर्मों के मुकाबले इस समाज में सबसे ज्यादा धार्मिक व सामाजिक प्रतिबन्ध होते हैं। नायिका सीमा-जो इस मुस्लिम समाज से आती है वह कहती है कि ,

सच कह रहे हो तुम। हमारी ही कोख से जन्म लेने वाले हमें सदियों से" अस्तित्व को नकारते रहे हैं और हम चुपचाप सब सहन करते-अपवित्र मानकर हमारे सह हैं। हमें आवाज उठाने का भी अधिकार नहीं मिला। हमें इसलिए दुनिया देखने से वंचित किया जाता है कि कहीं अपने अधिकारों के लिए हम एक स्वर एक मत न हो जाएँ। अब , एक बार इस घेरे को तोड़ देना चाहती ! गुरुओं का कुचक्र-तोड़ देना चाहती हूँ इन चन्द धर्म हूँ। आहवान करना चाहती हू ँ अपनी जाति का। आओ नये सूरज की किरणें स्वागत के , [20]"लिए खड़ो होगी चौखट पर। एक बार केवल एक बार उद्देश्य के लिए आगे आ जाओ।

पितृसत्तात्मक समाज व मर्दवादीसोच ऐसी है कि स्त्री आज समाज के दूसरे तबक्के में आती है। पहले तो स्त्री को अवसर ही नहीं मिलता था क्योंकि पुरुषों ने उसके लिए ऐसे काम दिये हैं कि मुख्य स्वयं रहें और गौण स्त्री। जबकि स्त्रियों को भी कार्य उतना ही मिला है, परन्तु महत्त्व नहीं मिला। सभी धर्मों में देखें तो मुस्लिम धर्म में औरतों की हालत सबसे दयनीय है। इस धर्म में औरतों का जीवन स्तर अच्छा नहीं होता है। उसमें सामाजिक प्रतिबन्ध बहुत अधिक रहते हैं। चार दिवारी के अन्दर ही रहना है। शिक्षा का अधिकार बहुत कम मिलता है और पर्दा प्रथा सबसे अधिक इसी धर्म में रहती है। पर्दा करना तो मुस्लिम धर्म में हर वर्ग या आर्थिक स्तर के हर वर्ग में देखा जाता है। इनके सामाजिक प्रतिबन्ध अत्यन्त आवश्यक माने जाते हैं क्योंकि मुस्लिम धर्म में सामाजिक प्रतिबन्धों को धर्म से जोड़ा जाता है। यदि कोई सामाजिक प्रतिबन्ध में यदि कोई बदलना चाहता है तो ऐसा माना जाता है कि यह धर्म के खिलाफ है। नारियों के सम्मान या हक के बारे में वे कुछ रीति-रिवाज या रहन-सहन पर कुछ भी परिवर्तन संभव नहीं है क्योंकि इसके पीछे जो धर्म के ठेकेदार या ज्ञाता जो मौलवी आदि हैं वे सामने आकर इसे धर्म की मूल भावना से जोड़

देते हैं । यदि कोई ऐसा करता है तो उसके खिलाफ फतवा जारी कर देते हैं । यहाँ तक देखा गया है कि इस धर्म में कट्टरता इतनी होती है कि जो रीति-रिवाज परम्पराएँ तोड़ने की कोशिश करता है उसे मौत मिलती है । इन्हीं सब कारणों की वजह से ही समाज के कुछ वर्ग की स्त्रियों की दशा दयनीय बनी हुई है ।

“इतनी प्रगति के पश्चात् भी मुस्लिम स्त्री समाज जहाँ का तहाँ खड़ा है । उसका जीवन अत्यन्त दयनीय है । वह अपने पारिवारिक दायरे से एक पल भी बाहर नहीं आ सकती है । इनकी प्रगति का प्रतिशत सबसे कम है । जीवन के एकांगी पक्ष पर जीवित रहने वाली इस कोम की नारी संपूर्ण रुप से निर्बल है ।”[22]

इनकी प्रगति में सबसे बड़ी बाधा बनती है इनकी धार्मिक कट्टरता । मुस्लिम धर्म में सारी उपक्रियाएँ धर्म से जोड़ दी गयी हैं । कोई भी परिवर्तन सामाजिक या सांस्कृतिक करने पर धर्म प्रभावित हुआ लगता है । धर्म को बहुत चोट लगती है । इस समाज के सभी जनमानस में ऐसी ही अवधारणा बना दी गयी है कि कुछ भी सामाजिक परिवर्तन धर्म को समाप्त कर देता है । जो धार्मिक रुढ़ियाँ परम्पराएँ समाज में व्याप्त हैं उसमें बदलाव लाने के लिए यदि कोई सक्रिय होता है तो समाज उसे सहयोग नहीं देता क्योंकि सभी को लगता है कि इससे हमारा धर्म टूट जायेगा । इस भेड़ चाल से अलग यदि कोई जाता है तो धर्म के ठेकेदारों और मुल्ला-मौलवियों के द्वारा प्रताड़ित किया जाता है । उसके खिलाफ धार्मिक बहिष्कार करते हैं और मुस्लिम समाज में तो सजास्वरुप ‘फतवा’ जारी किया जाता है । इसी फतवे द्वारा या फतवे के डर से ही सामान्य जन कोई भी बदलाव कर नहीं पाते ।

“इतनी प्रगति के पश्चात् भी मुस्लिम स्त्री समाज जहाँ का तहाँ खड़ा है । उसका जीवन अत्यन्त दयनीय है । वह अपने पारिवारिक दायरे से एक पल भी बाहर नहीं आ सकती है । इनकी प्रगति का प्रतिशत सबसे कम है । जीवन के एकांगी पक्ष पर जीवित रहने वाली इस कोम की नारी संपूर्ण रुप से निर्बल है ।”[21]

इनकी प्रगति में सबसे बड़ी बाधा बनती है इनकी धार्मिक कट्टरता । मुस्लिम धर्म में सारी उपक्रियाएँ धर्म से जोड़ दी गयी हैं । कोई भी परिवर्तन सामाजिक या सांस्कृतिक करने पर धर्म प्रभावित हुआ लगता है। धर्म को बहुत चोट लगती है। इस समाज के सभी जनमानस में ऐसी ही अवधारणा बना दी गयी है कि कुछ भी सामाजिक परिवर्तन धर्म को समाप्त कर देता है। जो धार्मिक रुढ़ियाँ परम्पराएँ समाज में व्याप्त हैं उसमें बदलाव लाने के लिए यदि कोई सक्रिय होता है तो समाज उसे सहयोग नहीं देता क्योंकि सभी को लगता है कि इससे हमारा धर्म टूट जायेगा । इस भेड़ चाल से अलग यदि कोई जाता है तो धर्म के ठेकेदारों और मुल्ला मौलवियों के द्वारा प्रताड़ित किया जाता है । उसके खिलाफ- जारी किया 'फतवा' धार्मिक बहिष्कार करते हैं और मुस्लिम समाज में तो सजास्वरुप जाता है । इसी फतवे द्वारा या फतवे के डर से ही सामान्य जन कोई भी बदलाव कर नहीं पाते ।

पुरुष द्"वारा तीन बार तलाक कह देने से जीवन की डोर टूट जाती है। बांधने पर गाँठ आ जाती है और एकरूपता लाने के लिए नए जन्म की आवश्यकता होती है । मुसलमान स्त्री के वैवाहिक जीवन की यही तो विवशता है इसीलिए इस कौम की स्त्री किसी भी अन्याय के लिए प्रतिकार नहीं कर पाती।[22]"

इन्हीं सब कारणों से ही मुस्लिम समाज सबसे निर्बल समाज है । किसी भी देश या किसी भी समाज की उन्नति देखनी हो तो वहाँ की महिलाओं की स्थिति देखनी चाहिए। इस समाज में सबसे अधिक स्थिति महिलाओं की खराब है क्योंकि इस धर्म में एक से अधिक विवाह करने की अनुमति है। और सबसे खराब नियम इस धर्म में तलाक देने का है। पुरुष यदि अपने मुँह से तीन बार तलाक कह दे तो वह महिला तलाकशुदा हो जाती , है। इसी कारण से इस समाज की महिलाएँ सबसे अधिक कमजोर महसूस करती हैं। इसी तलाक के नियम से ही महिलाएँ मुस्लिम धर्म में असुरक्षित रहती हैं । वे अपने जीवनयापन आदि के लिए अपने पति पर ही पूर्ण निर्भर रहती हैं। बाहरी दुनिया से इन्हें कोई अनुभव नहीं रहता। केवल अपने परिवार तक ही इनकी दुनिया है।

वे इतने छोटे घरों में रहते कि सोने तक के लिए बारी लगानी पड़ती है“ क्योंकि घर में लोग ज्यादा हैं। महिलाएँ अधिक बच्चे नहीं चाहती। वे परिवार नियोजन के साधनों का इस्तेमाल करना चाहती हैं लेकिन मर्द इसके लिए तैयार नहीं होते हैं। बहुत सी-नियोजन का तरीका इस्तेमाल करती हैं।-स्त्रियाँ अपने पतियों को बिना बताए परिवार स्त्रियों ने आयोग के सदस्यों से कहा कि वे मुल्लाओं के समझाएँ कि परिवार नियोजन से ही देश और सबका भला है।[23]”

मुस्लिम धर्म में स्त्रियों के पति इनको बहुत इज्जत नहीं देते हैं क्योंकि घर में कई पत्नियाँ होती हैं। सभी पत्नियाँ अपने-अपने अधिकारों को लेकर सुरक्षित रहना चाहती हैं। यदि वे पति का प्रतिकार करेंगी तो पति उनके मुकाबले दूसरी पत्नी को अधिकार दे देगा। इस धर्म मं आदमी परिवार नियोजन के साधनों का प्रयोग अनुचित मानता है। बच्चे होना इस धर्म में खुदा की नेमत मानते हैं। कुछ महिलाएँ अधिक संतान नहीं चाहती हैं। यहि वे परिवार नियोजन के उपाय करती हैं तो पति उन्हें ऐसा करने नहीं देते हैं। फिर भी कुछ महिलाएँ चोरी चोरी इन साधनों का प्रयोग करती हैं। कई सर्वे में यह बात सामने आयी है कि महिलाएँ नहीं चाहतीं कि हम परिवार नियोजन से दूर रहें। वे यह भी नहीं चाहती कि बच्चे अधिक हों। वे अपने-अपने पति से परेशान रहती हैं। वे कहती हैं कि पतियों को समझाना आसान नहीं है।

इस कहानी में लेखिका नीरजा माधव का उद्देश्य अपनी नायिका के द्वारा सिर्फ समस्याओं को ही सामने लाना नहीं है बल्कि इन समस्याओं का गंभीर हल क्या हो सकता है यह भी दिखाने का प्रयास किया गया है। मुसलमानों में रुढ़िवादिता इतनी गहरी है कि कुछ भी बदलाव इन्हें धर्म के खिलाफ लगता है। इसलिए इसमें परिवर्तन लाना मुश्किल है। परिवर्तन लाने के लिए धीरे-धीरे व सतत प्रयत्न की आवश्यकता है। इसी तरह का संकल्प कहानी की नायिका लेते हुए कहती है कि-

“नहीं रंजन, ऐसा मत कहो। सदियों की नींद इतनी आसानी से नहीं टूटेगी। कोई जगाने वाला तो चाहिए ही।”

"...लेकिन अपने साथ ही अपने बेटे"

"मत कहो बेटा। अपनी कोख से एक और पितृ-सत्ता को जन्म नहीं देना चाहती मैं। हमारी जाति का शोषण होता रहा, मैं उसी धर्म की नींव पर कुठाराघात करुँगी। यह बच्ची मेरा हथियार है।"[24]

नारी सशक्तीकरण पर सोच रखने वालों का मानना है कि समाज के वर्गगत अध्ययन में यह पाया गया है कि मुसलमान औरतें ही देश में सबसे पिछड़ेपन का शिकार हैं। इसके पीछे इनकी धार्मिक कट्टरता है। इस समाज की नारियों की अवधारणा बदलने के लिए धीरे धीरे व सतत-प्रयास करना होगा। लोगों की सोच बदलने में वक्त लगेगा। यदि हर औरत समाज की इन कुरीतियों की असलियत अपने सही दिखाए-अपने बच्चों को सही-तो ही परिवर्तन हो सकता है।

"वस्तुतः आज आवश्यकता सरकार, बुद्धिजीवियों, समाज-सुधारकों से लेकर आम जन तक, सभी के सम्मिलित प्रयासों और भागीदारी से निर्मित ऐसे कानून की है जो मुस्लिम समाज में व्याप्त कुरीतियों पर प्रहार करने में सक्षम हो। एक ऐसी व्यवस्था की शुरुआत हो जिसमें मुस्लिम महिलाओं के अधिकारों को पूर्ण संरक्षण प्राप्त हो और यह सब राष्ट्र की मुख्यधारा में रहकर ही करना होगा। उससे कटकर पृथक रहकर मुस्लिम जगत का भला कभी नहीं हो सकता है।"[25]

सोच में परिवर्तन लाने में पीढ़ियाँ चली जाती हैं। प्राचीन काल में नारी व पुरुष की तुलना करें तो ज्यादा अन्तर नहीं मिलता है। मध्यकाल में आये आक्रांताओं द्वारा सारी प्राचीन परम्पराओं का विनाश करके स्त्रियों पर गलत परम्पराएँ लगा दी गयीं। इसी कारण मध्यकाल के गलत रीतियों का परिणाम आज के मुस्लिम समाज पर पड़ा जिसमें , सुधार बहुत ही कम देखा जाता है। अतः इसमें सुधार के लिए बहुत लम्बे व सतत प्रयास तभी कुछ सोच में परिवर्तन सम्भवन है। क्योंकि मर्दवादी सोच अवधारणा से सिर्फ पुरुष ही नहीं प्रभावित रहते बल्कि इसमें महिलाएँ भी बहुत प्रभावित रहती हैं। इन्हीं महिलाओं

की सोच बदलने से ही स्त्री मुक्ति संभव हो सकती है । किसी भी समाज के सकारात्मक प्रयास से ही परिवर्तन सम्भव है । नारी की समाज में स्थिति और महत्ता का एक बहुत महत्त्वपूर्ण आयाम यह भी है कि उसकी स्वाभाविक सहिष्णुता और कलात्मकता द्वारा विश्व और समाज में संतुलन लाया जा सके । उसकी बुद्धि और प्रतिभा विज्ञान का प्रयोग मानव हित में अधिकाधिक कर सके । साथ ही पुरानी और टूटने वाली प्रवृत्तियों की जकड़न को दूर कर नारी अपनी शक्ति और सामर्थ्य पर विश्वास कर सके यह उसकी अस्मिता को , रेखांकित करने की पहली शर्त है।

इन्हीं सब सकारात्मक विचारों के साथ ही स्त्री मुक्ति संभव है । विचारों में-परिवर्तन लाकर ही पूर्व अवधारणाओं को तोड़ा जा सकता है ।

जैसे कहानी की नायिका को ज्ञान होता है कि मुक्ति कैसे संभव है या स्त्री मुक्ति के हथियार क्या हो सकते हैं । ऐसा ही आत्मबोध सभी औरतों को हो जाये तो उस ज्ञान से सभी समस्याओं से निजात मिलने की एक उम्मीद बन जायेगी । इसी उम्मीद से नायिका कहती है कि सागर में ही नहीं जीवन में ये शान्ति निश्चय ही तूफान आने से पहले की शान्ति है ।

4. 7 लड़ाई अभी जारी है

प्रस्तुत कहानी नवनीता द्वारा विविध समय व विविध स्तर के पात्रों द्वारा स्त्री मुक्ति की व्यथा बताती है । लेखिका नीरजा माधव ने नवनीता को कहानी की नायिका बनाकर उसके द्वारा आत्मकथात्मक कहानी कहलवायी है । नवनीता पेशे से एक पत्रकार है । अन्य पात्रों को बड़े ही मनोयोग के साथ व पितृसत्ता के मनोभावों के साथ प्रस्तुत किया है । मर्दवादी सोच के दुःपरिणामों से परेशान कहानी के अन्य पात्र सशक्तिकरण से दूर रह जाते हैं अलग रुढ़िवादिता के कारण सामाजिक पिछड़ापन-समाज की अलग , यह किसी भी देश जाति के लिए उचित नहीं हो सकता है। ,नारी वर्ग में है

नवनीता खुद एक पढ़ी-लिखी लड़की है। वह अपने घर वालों का व्यवहार भी बताती है कि मेरे घर वाले मुझे कई बार लड़की की सीमा में ही रहने की हिदायत दे चुके हैं। उनके अनुसार हर लड़की को जो परम्पराएँ आदि हैं, पितृसत्ता द्वारा जो तय कर दिया गया है, उसी में रहना है। इसके बहार की दुनिया तुम्हारे लिए नहीं है। खुद को पुरुषवादी सोच से मुक्त करने के सिवा स्त्री का और क्या महत्त्वपूर्ण कार्य हो सकता है ? स्त्री, पुरुष निर्मित कसौटी पर अपने आप को रखती जा रही है। ये सीमाएँ, कसौटी स्त्री को तोड़ने होंगे।

“यह सच है कि स्त्री-विमर्श ने स्त्री को वस्तु से व्यक्ति बनाया है। उसे मनुष्य होने का एहसास, बराबरी का बोध, मुक्त व स्वतंत्र रुप से निर्णय लेने का अधिकार और अपनी देह की मालिक मैं खुद हूँ कहने का साहस दिया है। किंतु एक विचित्र सच्चाई यह भी है कि स्त्री-मुक्ति का एहसास होने के बावजूद विश्वभर की स्त्रियाँ पुरुषों द्वारा निर्धारित सौन्दर्य मानकों के खांचों में खुद को फिट करने की होड़ में शामिल हैं। जिंदगी भर वे इसी के लिए प्रयासरत रहती हैं। आज भी यही स्थिति है।”[26]

उपर्युक्त विचार रमणिका गुप्ता के हैं। इन्होंने बताया है कि स्त्रियों को पुरुषों द्वारा गढ़ी गयी कसौटी के बाहर भी जाना है ऐसा अहसास करना चाहिए तभी नारी मुक्ति , संभवहै कि अवसरों की प्राप्ति दोनों को हो एक को नहीं। यदि स्त्री अवसरों को नहीं , पुरुषों ने तो अपने ,स्त्री की पराधीनता कैसे टूटेगी ,भुनाती है तो सदियों से चली आ रही लिए व स्त्रीयों के लिए मानक तय कर दिए हैं जिसमें प्रथम स्वयं पुरुषों ने स्थान पाया है व दूसरेदर्जे की नागरिक महिला मानी गयी हैं। जबकि महिलाएँ किसी भी तरह से पुरुषों से कमतर नहीं हैं। अतः रमणिका जी का विचार है कि स्त्रियों को पुरुषों द्वारा निर्मित मानकों से बाहर निकल कर अपना नया आयाम नया मानक स्थापित करना चाहिए। , क्योंकि स्त्रियों की मुक्ति तभी संभव है जब स्त्री स्वयं ही पुरुषों द्वारा निर्धारित किए गये सभी अवधारणाओं को धराशायी करेगी तभी स्त्रीमुक्ति आन्दोलन चरितार्थ होगा।-

“रिपोर्टिंग लेकर लौटी तो माँ, पिताजी, भाई सब के सब आगबबूला ।

बहुत ज्यादा मन न बढ़ाओ नवनीता । हमने छूट दी है तो लगाम खींचना भी जानते हैं । लड़की हो, लड़की की सीमा में रहो ।”[27]

इन्हीं मर्दवादी सोच व पितृसत्तात्मक विचारों की रुकावट से ही स्त्री मुक्ति में बाधा आ रही है । जैसे नवनीता के साथ हुआ और नवनीता ने पत्रकारिता बन्द कर दी , उसी तरह समाज के सभी वर्गों में स्त्रियों कोएक निश्चित ढाँचे में रखा जाता है । और इसी ढाँचे से बाहर निकलने का अनामिका जी कह रही हैं कि स्त्री मुक्ति बाधा का एहसास होने पर उस बाधआ को तोड़ने का प्रयास हर स्त्री को करना चाहिए । नवनीता अपने मुहल्ले में घटने वाली विभिन्न घटनाओं के माध्यम से स्त्री विमर्श के विभिन्न सरोकारों को दृष्टिगत कर रही है कि किसी स्त्री पर हुए अन्याय के लिए स्त्री को स्त्री ही न साथ दे इसमें पितृसत्ता कैसे प्रभावित करती है । ऐसे ही समाज में सभी घटनाओं की बानगी समझी जा सकती है ।

नवनीता कहानी आगे बढ़ाते हुए अम्मा की कहानी बताती है जो कि एक स्वतंत्रता सेनानी हैं आजादी की लड़ाई में अम्मा जेल काट के आय़ी है । अम्मा के परिवार , छः दशक पहले स्त्रियों-की व अम्मा की खुद की कहानी नवनीता बताती है कि आज से पाँच की दशा क्या थी । पुरुषों के लिए तब भी स्त्री एक वस्तु थी न कि इंसान । अम्मा बताती है कि कैसे आजादी की लड़ाई में उन्हें शामिल किया गया पुरुषों के द्वारा और फिर पुरुषों के द्वारा ही उन्हें अपनाने से यह कहकर इंकार कर दिया की तुम तो जेल काटके आयी हो । बिलकुल यही हाल था स्वतंत्रता आंदोलन में भी जब लड़ाई लड़ने का अवसर था महिलाओं और पुरुषों दोनों का संघर्ष होता था । आंदोलन-धरना देना आदि में महिला ,सत्याग्रह , रुषों ने मिलकर देश को आजाद कराया । परन्तु आजादी के बाद महिलाओं के योगदानु्प परिवर्तन नहीं हुआ कि वे भी हर लड़ाई में साथ हैं तो वे दूसरे दर्जे की नागरिक कैसे बन गयीं । यही बात महिलाओं को समझ में आ गयी । पितृसत्ता ने हमें अपनी सत्ता के लिए

ही पिछड़ा बना रखा है। परन्तु आजादी की लड़ाई में महिलाओं को भी अपने अस्तित्व का एहसास हो गया था।

पश्चिम में यह मुहिम औद्योगिक क्रान्ति के साथ शुरु हुई। भारत में तो इस" परिवार के बाहर-लेकिन गाँधी के स्वतंत्रता आंदोलन ने स्त्रियों को घर ,रुप में तो नहीं निकलकर देश के लिए आन्दोलन करने और परिवार के दायरे के बजायदेश के दायरे तक उनकी सोच को विस्तृत करने में एक बहुत बड़ी भूमिका निभाई या यूँ कहा जाए कि स्त्री को माँ पत्नी व प्रेमिका की भूमिका से निकलकर देश के नागरिक की हैसियत हासिल ,बहन , करने की राह दिखाई। राजनैतिक चेतना से लैस हुई भारतीय स्त्री का सामूहिक तौर पर स्त्ृरी मुक्ति की तरफ यह पहला बहुत बड़ा कदम था। हालांकि आजादी की सिपाही या- लेकिन वह घर और ,देश की नागरिक बनी वह परम्पराओं से मुक्त नहीं हो पायी थी परिवार की दीवारें तोड़ने में जरुर सफल हो गई थी। यह मुहिम उसकी राजनैतिक मुक्ति

स्वतंत्रता आन्दोलन के उपरान्त महिलाओं में एक प्रकार की जागरुकता आ गयी। उन्हें अपनी हैसियत का पता चल गया कि पुरुषों की सोच व सत्ता की लालसा की वजह से महिलाएँ पीछे हैं। वरना उनमें शारीरिक व मानसिक कोई विशेष अन्तर नहीं है। जो भी अन्तर है वह सिर्फ अवसरों का न मिलना ही है। अवसरों के न मिलने के दो उदाहरण नवनीता आगे देती है कि पितृसत्ता के मनोभाव का असर इतने गम्भीर तरह से ; सभी पर छाया है कि उससे बाहर जाना आसान नहीं है।

जैसा कि अम्मा एक स्वतंत्रता सेनानी हैं। उनको सरकारी आवास प्राप्त है। एक पुत्र है उदयभान जो कि डिप्टी एसहै .पी.। एक भरा पूरा परिवार है। अम्मा खुद एक- जागरुक महिला हैं। उन्हीं के परिवार में बहू ने नौकरी करने की इच्छा जाहिर की तो पति व ससुर ने इसका विरोध किया। परिणाम यह हुआ कि रंजना को ही अपनी इच्छा व जिद छोड़नी पड़ी। पितृसत्ता की यही छोटी सोच के कारण ही महिलाएँपरिवार और समाज में

अपनी अलग पहचान नहीं बना पाती हैं। गृहिणी कितना भी कार्य करे परन्तु उनकी पहचान घर के पुरुषों के माध्यम से ही सम्भव है।

अम्मा का घर इतना आधुनिक विचारों वाला होते हुए कि जहाँ अम्मा आजादी की लड़ाई में शामिल रहीं ,सरकार द्वारा अनुदान मिला ,बेटा डिप्टी एस ,बन गया .पी. विलासिता के लिए सारे साधन उपलब्ध हैं। सामाजिक महिला का अस्तित्व अपने अस्तित्व के लिए पुरुषों की सोच के खिलाफ यदि कुछ करना है तो पुरुष वर्ग उसमें साथ नहीं देगा है। यदि कोई औरत घर की चारदीवारी से बाहर निकलकर अपनी शिक्षा का उपयोग करना चाहे तो भी पुरुष वर्ग का इसमें सहयोग नहीं होता समाज में ऐसा देखा गया है। , साथ आपस में मतभेद भी बढ़ने-इसी असहयोग के कारण स्त्री व पुरुष में अन्तर के साथ लगे हैं।

आज स्त्री विमर्श में चिंतन इतना आगे बढ़ गया है कि स्त्रियों को आभास होने लगा है कि पुरुष वर्ग ही है जो स्त्रियों को आगे नहीं आने देता है। उन्हें अब पुरुष वर्ग से सीधे शिकायत होने लगी है। अब सीधी लड़ाई स्त्री व पुरुष से है। अगला उदाहरण नवनीता अम्मा की बेटी का देती है। साधना जो अम्मा की बेटी है वह अपने सहपाठी शेखर से शादी करने की बात कहती है तो उसके घर में इस बात को लेकर क्रांति हो जाती है। फलस्वरुप साधना के बहुत कहने पर भी घर वाले तैयार नहीं हुए और अन्ततः साधना की जिद ने उसका मायका समाप्त कर दिया। अतः आधुनिक सोचयुक्त घर में नारी के लिए रुढ़ियों से दूर जाने का कोई अवसर नहीं मिलता। यदि वह स्त्री अपनी जिद पर आ जाये तो यह समाज उसे उचित सजा भी देता है। उसे अपने घर पिता से रिश्ता तोड़ना-माता ,परिवार-पड़ता है व बहिष्कार सहना पड़ता है।

नवनीता को आज अम्मा के उपर एक फीचर तैयार करना था। इसलिए वह अम्मा के पास गयी थी। अम्मा उसे बताती है कि आजादी की लड़ाई में वह जेल कैसे गयी थी कितनी आयु थी उनकी। अम्मा उस घटना को भी बताती है कि सभी लोग गन्ने के खेत ,

में छिपे थे। चारों तरफ से पुलिस थी। मैं क्रान्तिकारियों तक ताजा पानी और बाहर की खबर देने जाती थी। एक बार मेरी तलाशी पुलिस वालों ने ले ली और मुझे बहुत मारा, कि बताओ गन्ने के खेत में कितने क्रान्तिकारी छिपे हुए हैं। मैंने कुछ भी नहीं बताया। मैं लगा दी गयी। सभी लोग गिरफ्तार हो गये। मैं भी सबके साथ जेल में छः महीने रही फिर आयी। इस तरह से अम्मा देशसेवा में शामिल रहीं।-

कमोबेश यही स्थिति उस समय सभी देश की महिलाओं की थी। जो कि आजादी की लड़ाई में तो पुरुषों के साथ बराबरी पर थी परन्तु स्वतंत्र भारत में फिर से महिलाएँ पहले की तरह अबला व निरीह बनकर चारहदीवारी में रहने को मजबूर होने लगी। एक बार जब महिलाओं ने देख लिया कि पुरुष श्रेष्ठ कैसे होता है उसमें ऐसी कोई, भी प्रतिभा नहीं होती जो महिलाओं में नहीं होती। अतः स्वतंत्र भारत में महिलाएँ पहले की तरह निर्बल निरीह नहीं रहना चाहती। वहीं से महिलाओं का विद्रोह होना प्रारम्भ होता हैधीरे बड़ा होना प्रारम्भ करता है।-जो धीरे,

उसी समय काल की अम्मा भी है। वो भी बताती है कि आजादी की लड़ाई महिला व पुरुष दोनों ने लड़ी हो परन्तु पुरुष को लगता है कि महिलाओं का इसमें कोई योगदान नहीं है। उस समय महिला यदि घर से बाहर निकल जाये तो अच्छा नहीं माना जाता था। आजादी की लड़ाई के बाद अम्मा बताती है कि लड़कियों का जेल जाना सब अच्छा नहीं मानते थे।

...आपकी शादी हो चुकी थी तो ससुराल वाले“

मेरा प्रश्न उन्हें किसी तीर की तरह छू गया था, परन्तु स्वयं को संयमित रखते हुए उन्होंने हँसने का प्रयास किया।

अरे बिटिया, जेल से छूटकर आने के बाद तो हृदय-छुट्टी की नौबत आ गई थी। गौना ले जाने को कत्तई तैयार नहीं थे वो लोग। कहते थे, जेल से छूटकर आयी लड़की को ले जाकर हम समाज में कौन-सा मुँह दिखायेंगे?”[29]

अतः आजादी के समय की यह स्त्रियों की दशा थी जो तत्कालीन अम्मा के साथ घटित घटना से स्पष्ट हो जाता है। निश्चय ही तब स्त्रियों के लिए पुरुषों के मुकाबले महत्त्व नहीं था। यदि वे रुढ़ियों से तनिक भी आगे बढ़ती तो उन्हें पितृसत्ता की सोच से टकराना पड़ता। मर्दवादी सोच से लड़ना पड़ता था। यदि देखा जाये तो तब और अब में स्त्री के प्रति कोई खास बदलाव नहीं आया है। यह बहुत ही चिंतनीय बात है। इसी तरह की बात नवनीता से अम्मा भी करती है तो समाज के विकास के सभी मानक ध्वस्त हो जाते हैं कि आजादी के बाद की स्त्री और अब की स्त्री में क्या अन्तर है।

"अब क्या? अपनी तो किसी तरह बीत बिता गई है। तुम लोग अपना बताओ। क्या महसूस करती हो घर बाहर...? बन्धन या मुक्ति। क्या फर्क आया है समाज की निगाह में? भ्रूण हत्या से लेकर भोगपरक दृष्टि कहीं जरा-सी भी धूमिल हुई है?

अम्मा का स्वर कातर होते "होते दार्शनिक हो उठा था।-30

अम्मा की ये बातें सुनकर नवनीता की बोलती बन्द हो गयी। स्त्रियों पर हुए सभी शोध व विकास योजनाएँ बौनी दिखने लगीं। सत्य कहा है अम्मा ने। आज की स्त्री के बन्धन व अवधारणा में नये-पुराने में ज्यादा अन्तर नहीं है। बलात्कार, भ्रूण हत्या, स्त्री को वस्तु की तरह देखना, किसी भी पक्ष में ज्यादा अन्तर नहीं आया है। दरअसल, स्त्रियों को खुद में स्त्री-दृष्टि पैदा करनी होगी। अभी तो अधिकांश स्त्रियाँ पुरुष दृष्टि से ग्रस्त हैं। अभी तक स्त्रियाँ खुद भी दूसरी स्त्री को एक स्त्री के रुप में देखने की क्षमता हासिल नहीं कर सकी, इसलिए वे स्त्री होने के नाते दूसरी स्त्री की त्रासदी को नहीं समझ पाती। इन्हीं सब छोटे-छोटे कारण से स्त्रियों में मूलभूत परिवर्तन नहीं हो रहे।

अंत में नवनीता से अम्मा द्वारा कही गयी वही बात पूर्ण चरितार्थ होती है कि-

"लिख देना- लड़ाई अभी जारी है।"

4. 8 एरियर

यह कहानी रेनू की है जो कि एक गृहिणी है । उसका पति सरकारी कार्यालय में नौकरी करता है । अशोक नौकरी करने के सात साल के बाद शहर में ही रहने लगा जहाँ पर धीरे-वह धीरेएक मकान बना लेता है । रेनु अपने पति अशोक दो बेटियों व एक बेटे के , साथ रहती है । रेनू जो कि कहानी की नायिका है उसका स्वभाव मध्यवर्गीय परिवार के लिए ही जैसा सरल व मीठा है । वह एक आदर्श पत्नी व एक आदर्श माँ है । परन्तु अशोक से वह पत्नी के अधिकारों को लेकर प्रतिकार करती है । जो कि एक आदर्श महिला को करना चाहिए । रेनू अपने कर्तव्य को पूर्णरुपेण निभाते हुए एक भारतीय आदर्श स्त्री के अधिकारों को कभी भी भूलती नहींहै । वह पति अशोक को कई बार बताती है कि मैं पत्नी हूँ । ऐसे करना मेरा अधिकार है आपका नहीं । दोनों पति-पत्नी एक आदर्श दम्पति की तरह हँसी-खुशी रहतै हैं ।

यदि कुछ अपवादों को छोड़ दिया जाए तो पुरुष और स्त्री का सम्बन्ध अपने" सभी आयामों में श्रेष्ठता और हीनता के समीकरण द्वारा परिभाषित होता है । प्रागैतिहासिक काल से ही पुरुषों की श्रेष्ठता के प्रमाण सामने लाए जाते रहे हैं । बताया जाता है कि पुरुष शिकार करने जाते थे और स्त्रियाँ घर की रखवाली करती थीं । पर अपने कार्यों को श्रेष्ठ बताने के क्रम में पुरुषों ने स्त्रियों के घर में रहने के अपेक्षाकृत सुरक्षित और कम मेहनत वाला बताया जबिक जंगल में शिकार करने के लिए जाने के ,अपने कार्य को वीरतापूर्ण और जोखिमभरा बताया । आमतौर पर यह नहीं सोचा गया कि उस जमाने में अपने घर में बैठी किसी स्त्री के लिए स्वयं को जंगली जानवरों के आक्रमण से बचाना कितना कठिन होता होगा और यह उसे अकेले ही करना पड़ता होगा ।[31]" दाम्पत्य जीवन पति-पत्नी के लिए किसी उत्सव से कम नहीं है । यदि दोनों एक दूसरे से स्नेह व महत्त्व का भाव-रखें तो। परन्तु प्रागैतिहासिक काल से मर्दवादी प्रभुत्व की सोच भारतीय पुरुषों पर पूर्ण पूर्णरुपेण है । तभी तो कहते हैं कि स्त्री मुक्ति में बाधा पुरुषों और पितृसत्ता की समर्थक महिलाओं से भी है । ऐसा इसलिए होता है कि उन महिलाओं को ज्ञान ही नहीं है कि सही

क्या है और गलत क्या है । इसी जानकारी के अभाव में कुछ महिलाएँ भी पितृसत्तात्मक सोच की समर्थक बनी हुई हैं । कहानी में रेनू अपने पति अशोक को बताती है कि जो काम मुझे करना चाहिए उसे आप न किया करें । वह कहती है कि-

उस दिन भतीजे को चुपके से एक हजार रुपये देते हुए उसे रेनू ने देख लिया“ था। उस समय तो वह अनजान बनी रसोई में चली गई थी परन्तु रात में सोते समय उसने अपने पति को समझाया-

देखो, इस तरह से तुम मेरे और अपने परिवार के बीच में खाई बढ़ा रहे हो । वही रुपये यदि मेरे हाथ से दिलाते तो शायद मेरे प्रति एक अच्छी धारणा पैदा होती । मैं तो कमाती नहीं कि अपनी तनख्वाह से दे दूँ । ... देना तुम्हारी तनख्वाह से ही है ।

अशोक को पश्चाताप हुआ । साधारण पढ़ी-लिखी महिला में इतनी समझदारी और उसमें...? उसे स्वयं पर कोफ्त हो आई थी ।”[32] कुछ लोग स्त्री विमर्श सिर्फ कामकाजी व रोजगार के अवसरों में ही देखते हैं कि स्त्री की अस्मिता सिर्फ सरकारी योजनाओं और शिक्षा, रोजगार आदि में है । जबकि स्त्री की अपनी पहचान देश, समाज व परिवार सब स्थानों पर होती है । नये विमर्शकार अब यह धारणा बना रहे हैं कि घर की चार दिवारी में महिलाओं की कोई पहचान नहीं होती । यदि महिला रसोईघर सम्भाल रही है तो उसकी पहचान व अस्मिता सब समाप्त हो गयी है । परन्तु ऐसा नहीं है । गृहिणी होना व रसोई सम्भालना गलत नहीं है । परन्तु अपने परिवार में उसे महत्त्वपूर्ण समझा जाये । उसे सम्मान मिले । ऐसा ही मानना है नीरजा माधवजी का जिन्होंने अपने पात्र रेनू के माध्यम से एक पत्नी के द्वारा पति को जवाब दिया है जो कि समस्त समाज को जवाब दिया है । हर घर में महिला ही वह धुरी होती है जिस पर परिवार प्रगति करता है । सुचारु रुप से चलने के लिए घर की महिलाओं को भी उतना महत्त्व मिले जितना कि अन्य सदस्य को ।

“यदि कोई पुरुष यह चाह रहा हो कि स्त्री उसकी अनुभूति करे तो निश्चय ही वह अनुभूति करती रहती है कि घर में उसका स्वामी उसका पति सर्वस्व उपस्थित है किन्तु पुरुष

स्त्री की अनुभूति ऐसे करता है जैसे एक मालिक अपने नौकर की करता है। यही कारण है कि जीवन की स्वाभाविकता नष्ट हो जाती है और पुरुष निरन्तर अहमवादी होता चला जाता है। घर में कुंठा समा जाती है , उपेक्षाएँ बढ़ती जाती हैं। तिरस्कार द्वारा आत्मशक्ति नष्ट होने लगती है। इन सभी प्रतिमानों से मानसिक दुर्बलता इतनी प्रबल हो उठती है कि रक्त कोषाणु रोगी और दुर्बल हो जाते हैं।"33

जो नारियाँ गृहिणी होती हैं उनका कुछ लोगों की नजरों में वह स्थान नहीं होता जो बाह्य कामकाजी औरतों के लिए होता है। जबकि स्त्री कहीं भी रहे अपनी पहचान रखती है। घर स्त्री की सर्वशक्ति सत्ता से निर्मित होता है। घर ही वह जगह है जहाँ खुशहाली व सेवाभाव का उल्लास उपलब्ध किया जा सकता है। स्त्री जन्म से ही भाग्य निर्माण का स्वरुप प्राप्त कर लेती है। तथा धीरे धीरे घर निर्माण करने की क्षमता प्राप्त करती है।-हो। जो स्त्री अपनी शक्ति से परिचित होती है और उसे सत् की दिशा में प्रयुक्त कर सकती है तो निश्चय ही उसका घर स्वर्ग का प्रतिरुप बन जाता है। ऐसा समर्पण सिर्फ भारतीय संस्कृति के मानने वालों में ही मिल सकता है। पाश्चात्य सभ्यता में तो सारे रिश्ते व्यावसायिक आधार पर रहते हैं। आधुनिकता के प्रभाव से जो नई परम्पराएँ प्रारम्भ हो रही हैं वो भारतीय संस्कृति की कुछ महत्त्वपूर्ण परम्पराओं को समाप्त करती जा रही है।

"पाश्चात्य संस्कृति के गहरे प्रभाव से अंत से.... उपभोक्तावादी संस्कृति का उदय हुआ और दरअसल हम सामाजिक रवैये को देखे तो स्त्रियों की सबसे बड़ी त्रासदी उनका स्त्री होना है। नई सामाजिक एवं आर्थिक व्यवस्थआ के कारण इन स्त्रियों का परिवर्तन ऐसि स्थितियों में हो गया कि वे स्वयं को अन्यनिष्ठ, वस्तुनिष्ठ, कामचलाऊ और बिकाऊ मान लेने को बाध्य हुई। उपभोक्तावादिता के चलते स्त्री के पुराने महत्त्व को हटा दिया है। इसका गहरा प्रभाव अधिकांश स्त्रियों पर, कॉलेज और स्कूल की छात्राओं पर पड़ा है।"34

कहानीकार नीरजा माधव ने पाश्चात्य स्त्री विमर्श को एक सिरे से नकारते हुए अपने स्त्री पात्र के परिवार के प्रति प्यार व समर्पण को दिखाते हुए बताया है कि पश्चिम की सभ्यता

व्यवसायिक है जबकि भारतीय परम्परा प्यार, त्याग व समर्पण की है। रेनू अपने पति अशोक का साथ देते हुए कहती है कि-

"अशोक कुछ निढाल से हो गये थे। रेनू का चेहरा भी एक क्षण के लिए बुझ-सा गया था, पर अगले ही पल उसने कुछ निर्णय लिया था-

जंजीर के लिए एडवान्स वाला रुपया अभी मैंने रखा है। उसे मिलाकर आठ हजार पूरा हो जायेगा। कहीं से पुरवा हवा का झोंका आया था और कमरे की पश्चिम वाली खिड़की के पट उठंगा गया था।"[35]

कहानी की नायिका रेनू का यह कथन भारतीय संस्कृति की गरिमा को और ऊँचा करता है। साथ ही पाश्चात्य स्त्री-विमर्श में यदि रेनू के आधार पर तुलना करें तो निश्चय ही पाश्चात्य संस्कृति भारतीय मानकों के अनुसार कहीं भी टिक नहीं पायेगी। भारत में यदि स्त्रीयों को अवसरों की उपलब्धता रहे तो वे अपने वर्ग को नयी-से नयी ऊँचाईयों पर ले जायेंगी। इसमें कोई मतभेद नहीं है कि भारतीय मानस व पाश्चात्य मानस की संस्कृति में कोई समानता अधिक नहीं है। दोनों अपने-अपने सन्दर्भों में सर्वोपरि है।

प्रतिभाशाली नायिका रेनू अपने पति को यह बताती है कि यदि मैंने थोड़ा-सा भी संघर्ष किया होता तो आज मैं भी घर के खर्चों में पूर्ण सहयोग कर रही होती।

"आज भी सोचती हूँ तो कोफ्त होती है कि उस समय जरा-सा भी विरोध कर लेती तुम्हारे भइया-भाभी की मनाही का और अपनी पढ़ाई पूरी कर लेती तो आज मैं भी तुम्हारे हाथ बँटा सकती थी। इतना भार अकेले तुम्हारे कन्धों पर तो न होता।"[36]

यह मनोदशा भारत की सभी स्त्रियों की है कि थोड़ा सा भी संघर्ष करें तो एक नयी दुनिया बना सकती हैं। परन्तु सब कुछ विध्वस्त करके नहीं। परिवाररुपी इकाई को संगठित रखने का जिम्मा भी साथ-साथ चल रहा है। पितृसत्तात्मक व्यवस्था के विरुद्ध चुनौती बनकर खड़ी होने वाली स्त्री ही भविष्ट की स्त्री है। अतीत तो उसका पुराना ही है। जो कि समस्त मानव सृष्टि को संचालित व पोषित करता है। अतः शिक्षा, आत्म-निर्भरता और आत्मनिर्णय जैसी परिस्थिति उसे अपनी पहचान और होने न होने के विषय में सोचने को मजबूर करता है।

यही शिक्षा ही नारी को मुक्ति दिला सकती है न कि कोई आयातित संस्कार नारी की दशा व दिशा बदल सकते हैं।

4.9 देश के लिए

लेखिका डॉ. नीरजा माधव की यह कहानी देश के लिए देशप्रेम व स्त्री चिंतन की एक अनुपम रचना है। इसमें एक महिला का संघर्ष अपनी अस्मिता को लेकर है। वह अपनी जिन्दगी में अपनी खुद की पहचान के लिए खुद के कार्य के लिए या अपनी देशभक्ति के लिए उसे अवसर की प्राप्ति न हो पा रही थी। यह कहानी नायिका द्वारा आत्मकथात्मक शैली में कही गयी है। नायिका जब आत्मकथा कहती है तो वह यथार्थ सत्य होता है स्त्री-चिंतन के परिप्रेक्ष्य में। तब कुछ लेखकीय अनुभूति होती है इस परिप्रेक्ष्य में एक सन्दर्भ निम्न है -

"लेखकीय रुप में उतना ही इतिहास सामने आ पाता है जो मुठ्ठीफर लोगों द्वारा लिखा जाता है। किन्तु स्त्री की प्रतिरोधी शक्ति कितनी प्रबल है वह गुमानम रहकर भी अनेक कष्ट झेलती है और बड़े-बड़े कामों को अंजाम देती है। स्व की पहचान का सबसे बड़ा संकट ही यह है कि उसके कार्यों को देखा समझा जाए। अधिकांश स्त्री वादी विमर्श शोषण उत्पीड़न और पुरुष विरोधी हो जाते हैं। किन्तु परिवार और समाज की बनाई लक्ष्मण रेखाओं की दहलीज को लाँघकर जिन्होंने परिवार समाज और देश के लिए अपनी बहुआयामी क्षमताओं को सार्थक किया उनके नाम प्रायः अपिरिचित हैं।"[38]

स्त्री चिंतन या विमर्श में सिर्फ स्त्री के लिए, उसके अधिकारों के लिए, उसकी खुद की पहचान के लिए आवाज उठाना ही नहीं है। बल्कि अपने समाज के व अपने देश के लिए कुछ करना या करने के अवसर में कमी को पाया जाना या उसके खिलाफ आवाज उठाना ही स्त्री विमर्श है। यह कोई सामाजिक विवशता नहीं है बल्कि अपनी अस्मिता की पहचान है। सभी के अपने उसूल हैं, सबके अपने लक्ष्य हैं। सभी समाजों में औरतें तो सिर्फ शिकारी नाव की माँझी ही रह जाती हैं। असल में नाम व काम पुरुष ही लेता है। नारी को मिलता ही

क्या है, सिवाय अवहेलना के। पितृसत्ता के इस समाज में स्त्री को पुरुष कुछ भी महत्त्व नहीं देता है। इसी तरह की कहानी है देश के लिए। नायिका को उसका पति कोई भी महत्त्व नहीं देता है और नायिका पति के देशविरोधी कामों से परेशान थी। विरोध करती थी तो वह उसे फटकारकर हटा देता था। एक दिन नायिका ने सब कुछ विध्वस्त करके सबसे दूर निकल जाती है। बिना किसी सहारे के। अपने जीविकोपार्जन के लिए वह वेश्यावृत्ति को अपना लेती है।

"यह जीवन का कटु यथार्थ है कि भूख व्यक्ति को कोई भी पाप करने को बाध्य कर देती है और गरीब की नैतिकता, धर्म व सदाचार पेट भरने के जुगाड़ करने तक ही सीमित होकर रह जाती है। अबोध बालिकाओं, त्याज्य गरीब महिलाओं को इस धंधे के लिए लुभाना बड़ा आसान होता है। जिन्दा रहने के लिए अपनी आत्मा मारने का सौदा उन्हें करना पड़ता है। यह केवल संयोग ही नहीं है कि भारत में गरीबों, बेरोजगारों, भिखारियों व बीमारो की संख्या के साथ ही **गर्म** माँस का व्यापर व इससे सम्बद्ध लोगों की संख्या बढ़ती जा रही है।"[39]

कमजोर व बेसहारा लोगों को जीविकोपार्जन के लिए यह घटना अक्सर होती है कि वे लुभावने कार्य व अधिक पैसा कमाने के लिए गलत कार्यों में लिप्त हो जाते हैं। अधिक दिक्कत बेसहारा औरतों के साथ या छोटी बच्चियों को तो वेश्यावृत्ति के सिवा कोई अन्य दशा नहीं है जहाँ इनका भला हो जाये। जहाँ से इनका जीवनयापन हो सके। वेश्यावृत्ति में अक्सर वही स्त्रियाँ होती हैं जिन्हें कोई अन्य सहारा देने वाला नहीं होता है। इन हालातों में इन्हें पैसे की लुभावन होती है। और धीरे-धीरे स्त्रियाँ इस अपवित्र कार्य में लग जाती हैं। ऐसे ही कार्य में लिप्त है इस कहानी की नायिका भारती जो अपने देशद्रोही पति से दूर भागने में सफल रही व नये शहर में आकर बेटे व खुद की जीविका के लिए वेश्यावृत्ति के धंधे में संलिप्त हो जाती है। वह कहती है कि वेश्याओं का कोई धर्म नहीं होता है। कुछ भी नाम रख लो, कोई फर्क नहीं पड़ता। वेश्याएँ धर्म, संप्रदाय से अलग होती हैं जैसे सभी धर्म, जाति इत्यादि से अलग होती है मधुशाला। नायिका औरतों के बारे में बताती है कि इनके हालात ही ऐसे

होते हैं कि नारी ज्यादा कुछ कर नहीं सकती है । समाज के सभी सम्मानित कार्य व उपाय पुरुषों ने पितृसत्ता के नजरिए से अलग-अलग किए हैं जिसमें स्त्री को संतानोत्पत्ति के सिवा कुछ नहीं मिलता है । वह भी स्त्री को सिर्फ पालन-पोषण करना पड़ता है । अपने अधिकारों के प्रति संघर्ष करने केलिए पर्याप्त अवसर नहीं मिलते हैं । एक नारी का अपने अधिकारों के प्रति चिंतित होना भी लाजमी है । जो कि नायिका के कथन से स्पष्ट है-

"तुम्हारा नाम तो मैंने पूछा ही नहीं ।

उसकी परेशानी को समझ कर उसने बात को बदल ती ।

'तरन्नुम' कहो या संगीता... या कुछ भी पुकार लो । धर्म सम्प्रदाय से इतनी तटस्थ....?

हाँ, यही समझ लो, नारी का एक धर्म है पुरुष को सन्तुष्ट करना और उसके बच्चे जनना । उसकी एक ही जाति है, नारी जाति ।

शोषित और दलित जाति ।

इतना आक्रोश?

बस यही तो पै पास... कुछ कर सकने की शक्ति प्रकृति ने ही नहीं दी तो समाज कहाँ से देगा?

आवाज तो उठा सकती हो?

आवाज भी उठाने के लिए भुजाओं में ताकत होनी चाहिए । अन्यथा दबा दी जायेगी ।"[40]

भारतीय परिवेश में एक नारी के लिए मर्दवादी नजरिए की वजह से उन्नति करना एक संघर्ष है । जो नजरिया समाज में प्रचलित है उसमें नारी के लिए जो अवसर हैं उनमें से तो पर्याप्त नहीं है जो अधिकार हैं वो भी उनको प्राप्त करना मुश्किल है ।

*

4.10 वह नहीं तो यह

यह कहानी है संध्या नामक एक लड़की की । संध्या के जीवन में कालेज से लेकर नौकरी प्राप्त करना व फिर शादी-शुदा और वैवाहिक जीवन की समस्याओं को दिखाया गया है । जो कि एक प्रगतिवादी सोच की महिला का प्रतिनिधित्व करती है । जो पितृसत्तात्मक मानसिकता से संघर्ष करती है और परेशान होती है । परन्तु अपनी पहचान को खोने नहीं

देती। संध्या का जीवन संघर्ष आधुनिक नारी के लिए प्रेरणा स्त्रोत है। नारी चाहे गाँव की हो या शहर की, कामकाज करते रहना महिला का मूल स्वभाव होता है। गाँव की कामकाजी महिला या शहर की कामकाजी महिला हो, घर आने के बाद काम तो करना ही होता है। चाहे वह सभी के लिए हो या व्यक्तिगत के लिए।

"दूरदर्शन में प्रस्तुति सहायक श्रीमती विजयलक्ष्मी छाबड़ा का मानना है कि औरत तो नौकरी करके घिस जाती है, खास तौर पर महानगरों में, जिन्हें बसों में आना-जाना पड़ता है , उनके कष्टों का कहना ही क्या? दुनिया उसके छत्तीस खसम बनाने से नहीं चूकती। औरतों को बहुत सहनशील होना पड़ता है। एक तरह से पति पर उनका हक-सा हो जाता है। घरेलू महिलाएँ तो पति से हर चीज धौंस-धमक से ले लेती हैं। कामकाजी को तो इस दृष्टि से ये अवसर भी नहीं मिलता। वह कमाती है, अतः पति से हिसाब नहीं माँग सकती, घरेलू महिला की तरह मालकिन वाला भाव नहीं रहता है।"[41]

किसी भी बड़े महानगर में कुछ आर्थिक रुप से सम्पन्न लोगों को छोड़ दें तो ज्यादातर जनता में यदि महिला व पुरुषो दोनों नौकरी करे तो ही जीवनयापन सही से सम्भव है। और औरतों को तो घर और बाहर दोनों के कार्य करने पड़ते है। गृहस्थी औरत ही सम्भालती रहती है। और यदि झुग्गी झोपड़ी वाली कोई महिला कामकाजी हुई तो उसका तो दोहरा शोषण होता है। घर पर शराबी व अशिक्षित पति बच्चे आदि को सम्भालना, बाहर के कार्य करना।

ऐसी ही कामकाजी औरत है संध्या जो कि प्रशासनिक अधिकारी है। जो अपने कालेज की दोस्त कुमुद से बहुत दिनों बाद एक सेमिनार में मिलती है जो कि एक राजकीय कॉलेज की प्रिंसिपल है। सदर तहसील में सन्ध्या एस.डी. एम. है। उस सेमीनार के कुछ दिनों बाद कुमुद अपनी कालेज की दोस्त संध्या से मिलने एस.डी.एम. ऑफिस आती है। और संध्या कुमुद को अपने घर खाने पर बुलाती है। कुमुद अपने पति के साथ आती है जबकि संध्या अपने घर में अकेली मिलती है। कुमुद के पति खाना खाकर अपने मित्र के घर चले जाते हैं। फिर कुमुद का बेटा तब तक वह जागता रहता है। संध्या उसे कुछ और खाने के लिए प्रेरित

करती रहती है और बताती है कि मेरा बेटा जब घर में रहता है तो खूब खाता है । घर में कुछ रहता ही नहीं । कुछ देर बाद कुमुद का बेटा सो जाता है ।

संध्या से कुमुद कुछ पूछना चाहती है इस पर संध्या कहती है कि तुम्हें कुछ पूछने की जरुरत ही नहीं है । मैं सब बताना ही चाहती हूँ । मैंने अब तक बहुत खामोशी रखी । अब खामोश नहीं रह पाऊंगी ।

संध्या बताती है कि मैं बाहर से कठोर स्वभाव की दिखती हूँ, सबको लगता है कि यह महिला बहुत ही कड़क स्वभाव की है परन्तु शाम को सभी नौकरों के चले जाने के बाद मेरा असली रुप दिखायी देता है । मेरी कड़क आवाज सबको पता है परन्तु रात की सिसकियाँ कोई नहीं जानता है । संध्या आगे बताती है कि मेरा मन बचपन से ही प्रशासनिक सेवा में जाने का था परन्तु मेरे पति को मेरी नौकरी करने पर ही ऐतराज था । संध्या अपने पति के साथ सवाल-जवाब का एक प्रसंग कुमुद को सुनाती है । जिससे पितृसत्ता की सोच दिखती है-

"बचपन से ही प्रशासनिक नौकरी के प्रति मेरा आकर्षण था, पर मेरे पति को यह पसन्द नहीं था । उन्होंने कई बार मने करते हुए कहा था-

मैं नौकरी में हूँ फिर तुम्हें नौकरी की क्या आवश्यकता है? मेरे घर में किसी महिला ने आज तक ऐसा नहीं किया ।

तो क्या जो मेरी दीदी ने किया वहीं तक मुझे भी सीमित रहना चाहिए ।

मेरे जवाब से आनन्ददेव तिलमिला उठे थे । उन्हें मनाने की लाख कोशिशें निरर्थक साबित हुईं थी मेरी। इसी बीच सिविल सर्विसेज के लिए मैं चुन ली गई थी । बचपन का स्वप्न साकार हुआ तो उसे तोड़ने का साहस मुझमें कतई न था ।"[42]

संध्या के पति आनन्ददेव का यह कहना कि उनके परिवार में अभी तक किसी औरत ने नौकरी नहीं की, उनकी परम्परागत रुढ़िवादी सोच को दर्शाता है । एक नजर से देखा जाये तो दोनों की सोच में बहुत अन्तर है । संध्या आधुनिक प्रगतिवादी महिला है । जबकि उनके पति आनन्ददेव पितृसत्तात्मक रुढ़िवादी विचारों के पोषक हैं । इसी कारण से संध्या व

आनन्द देव के विचारों में तालमेल नहीं बन पाता है । और पति-पत्नी में लड़ाईयाँ होती रहती हैं । संध्या वह नारी है जो अपनी पहचान व वजूद के लिए संघर्ष कर रही है । वही नारी का अस्तित्व आनन्ददेव अपनी नजर में अच्छा नहीं मानते हैं । उनके हिसाब से नारी की योग्यता या क्षमता का कोई मोल नहीं है । परिवार की नारियों ने घर के बाहर नौकरी नहीं की है तो किसी को नहीं करना चाहिए । आनन्ददेव अपनी पत्नी से प्रतियोगिता की भावना रखते हैं । कहते भी हैं कि मुझे तुम पत्नी के टुकड़ों पर पलने वाला पति ही समझती हो ।

प्रस्तुत कहानी में नायिका संध्या के माध्यम से नीरजा जी ने एक संघर्षशील भारतीय नारी के आदर्श को स्थापित किया है । संध्या की बातों या विचारों से तनिक भी ऐसा नहीं है कि वह परिवार को नापसंद करती है । अपने पति व बेटे को वह खूब प्यार करती है । वह अपना अस्तित्व परिवार से अलग होने में नहीं तलाश रही । वह अपना अस्तित्व एक कामकाजी महिला के रुप में समझती है । जो कि सिर्फ एक गृहिणी ही नहीं, नारी का भी अपना स्वाभिमान होता है। उसके पास योग्यता है एक प्रशासनिक नौकरी है, पति चाहता है कि वह नौकरी छोड़कर सामान्य गृहिणी ही रहे । औरत को नौकरी करना पति आनन्द देव को पसन्द नहीं है । आनन्द देव रुढ़िवादी परम्परा के हैं । उनकी नजर में औरत सिर्फ घर सम्भाले तो ही अच्छा है । जबकि संध्या जीवन को चलाने के लिए हर रुप से अपने पति की बैसाखी बनना चाहती है । सिर्फ परम्परागत नारी बनकर नहीं । गृहिणी के सिवा भी नारियों का अस्तित्व होता है । वह पुरुषों की प्रतियोगी नहीं बल्कि सहायक बनना चाहती है । और स्वाभिमान व आत्मनिर्भर बनकर परिवार के साथ जीवनयापन करना चाहती है । जब नारी आत्मनिर्भर बनती है तो यह बात कुंठित व दकियानूसी विचारों वाले पुरुषों को नहीं सही जाती है । क्योंकि उनके विचार से औरतों को रुढ़िवादी परम्परा में ही रहना चाहिए । वह पुरुष के आगे गुलाम रहे, घर-गृहस्थी सम्भाले यही उसकी दुनिया है । नारी की भी अपनी एक पहचान होती है । वो भी पुरुषों के बराबर ही है । ऐसी ही एक पंक्ति नायिका संध्या कहती है कि-

"कितनी स्वाभाविक सी है यह बात किसी पुरुष के लिए। पत्नी के सामने वह स्वयं को नीचा नहीं देखना चाहता।"[43]

धीरे-धीरे संध्या के प्रति आनन्ददेव की गलतफहमी बढ़ती ही गयी। एक दिन संध्या जब सो रही थी तभी उन्होंने संध्या के बालों को काट दिया क्योंकि उनको लगता था कि इसी वजह से यह खूबसूरत लगती है। इसी खूबसूरती के कारण डी.एम. साहेब व अन्य लोग इसकी प्रशंसा करते रहते हैं। जिसके सहारे यह आगे बढ़ रही है। पति पत्नी के प्रति इतनी प्रतियोगिता रखता था क्योंकि आनन्द देव के दिमाग में कुंठित रुढ़िवादिता समाई हुई थी। संध्या ऐसी नहीं थी। वह पति को समझाने का प्रयास करती थी और सन्तुलन बना कर रखती थी। जब पति बात नहीं मानता था तो वह स्वयं को समझाकर समझौता कर लेती थी। आनन्ददेव द्वारा काटे गये बालों को वह अपने संघर्ष का एक पहलू मानकर समझौता कर लेती है। और तब से वह अपने छोटे बाल ही रखती थी। कुंठित विचारों से पुरुष कितना दुर्दान्त हो सकता है। आनन्ददेव की इन बातों से देखा जा सकता है। जब संध्या पूछती है कि किस कारण से आपने मेरे बालों को काट डाला है जबकि यही बाल शादी के बाद आपको बहुत पसन्द थे। ऐसा क्या हो गया अब कि आपने अपने हाथों से मेरे बालों को काट डाला?
"पूछा था कुमुद और पहली बार अपने क्रोध की चरम सीमा के साथ, पर उनका जवाब सुनकर मन और भी दुखी हो उठा था। उन्होंने कहा था...
तुम अपने रुप का लाभ उठाना चाह रही हो तो मैं तुम्हें इससे ही विकृत कर दूँगा। बहुत घमण्ड था न बालों का तुम्हें"[44]

कहानी में आनन्द देव को पितृसत्तात्मक मानसिकता का दिखाया गया है जो कि नारी के स्वाभिमान व अस्तित्व को पसन्द नहीं करता है। वह नारी को सिर्फ गुलाम ही देखना चाहता है। इसी परम्परागत कुंठित मानसिकता के कारण आनन्द देव मनोरोगी हो जाता है। अब संध्या के उपर बेटे गौरव व पति दोनों की जिम्मेदारी आ जाती है। अब उसका नौकरी करना जरुरी हो गया है। संध्या की पूरी कमाई पर बेटे के स्कूल खर्च व पति के हॉसिप्टल का खर्च चल रहा है। रुढ़िवादी कुंठित सोच का परिणाम यह हुआ कि आनन्द देव मेन्टल

हास्पिटल में है । बेटा गौरव सैनिक स्कूल में है । संध्या गर्मी की छुट्टियों में ही इन दोनों से मिल पाती है । और संध्या का नौकरी करना अब आवश्यक हो गया है । पहले तो यह स्वयं की पहचान या स्वाभिमान के लिए था, अब ऐसा नहीं है ।

वर्तमान परिदृश्य में यदि विचार किया जाये तो यदि स्त्री को शिक्षित कर दिया जाये तो वो अपना भला-बुरा स्वयं सोच सकती है । वो इतनी जागरुक हो चुकी है कि रसोई घर के सिवा भी दुनिया उनकी हो सकती है, पहचान बन सकती है । उनका अस्तित्व सिर्फ चार दिवारी के अन्दर ही नहीं है । कहानी के अन्त तक यह होता है कि पति आनन्द देव मानसिक रोगी होकर मेन्टल हॉस्पिटल में चला जाता है । उसे मर्दवादी सोच से परे समझ ही नहीं पड़ रहा है । इसी कुढ़न में वह पागल हो जाता है । इसी पितृवादी सोच की मानसिकता वाले कुछ पुरुषों के बारे में रमणिका गुप्ता जी का एक संदर्भ है कि महिलाएँ भले ही पुरुषों पर विश्वास न करें, उनको अपना सहयोगी न माने, ये शंका हमेशा रहती है । परन्तु पुरुष भी कुछ ऐसे भी मिलते हैं को वो टूट जायेंगे परन्तु झुकना उन्हें मंजूर नहीं है ।

"ये सब शंकाएँ और आरोप लगाने के बाद वे एक स्वीकारोक्ति भी करते हैं कि पुरुष अहं जरुर होता है । पुरुष टूट सकता है, पर झुक नहीं सकता । उनका कहना है कि अहं की यह प्रवृत्ति मानवेतर नर-प्राणियों में भी पाई जाती है, इसलिए इस मानवेतर प्राकृतिक गुण (जो पशुओं में भी है) का विरोध कैसा ?"[45]

कुंठित मानसिकता वाले पुरुष जो स्त्री को उनका अधिकार नहीं देना चाहते या स्त्री को उसके योग्य नहीं समझते हैं उन्हें ऐसे ही होना पड़ेगा क्योंकि जागरुक हो चुकी नारी आज वर्तमान में अपने अस्तित्व को लेकर सदियों से आगे की सोच रखती है, न कि पुराने ढर्रे पर चलना ।

*

4.11 चिटके आकाश का सूरज

चिटके आकाश का सूरज कहानी एक भारतीय संस्कार पोषित गाँव की अनपढ़ विधवा स्त्री जीरा की है जो पति की असामयिक मृत्यु के बाद अपने बच्चों को लेकर जीवन संघर्ष कर

रही है । जीरा एक अनपढ़ ग्रामीण महिला जरुर है वस्तुतः वह भारतीय संस्कृति की सच्ची सिपाही है । जो कि अपने मरे हुए पति की यादों में ही अपना जीवन गुजार देना चाहती है । अपने बच्चों के सिवा उसकी कोई भी इच्छा नहीं है । न अपने शरीर की और न अपने स्वयं के जीवन की ही । उसने स्वयं बताया है कि अपने पति के मरने के तीन साल बाद तक उसने आइना तक नहीं देखा है ।

प्रस्तुत कहानी चिटके आकाश का सूरज की नायिका जीरा जो भारतीय सभ्यता व संस्कार की पोषक है, पाश्चात्य संस्कार को नकारने वाली है । उसे शादी नहीं करनी है क्योंकि दूसरी शादी से वो तो खुश हो सकती है, परन्तु उसके बच्चों का जीवन खराब हो जायेगा क्योंकि दूसरी शादी में बच्चों को कोई महत्त्व नहीं देता है । जैसा कि पाश्चात्य सभ्यता में ऐसे ही होता है कि दूसरी, तीसरी शादी करते रहते हैं । उनसे जो बच्चे होते हैं वे हॉस्टल या अनाथालय में रहकर जीवन की शिक्षा लेते हैं । जबकि भारत में ऐसा नहीं है । यहाँ पर पति-पत्नी एक बार बन गये तो वो एक-दूसरे के साथ ही जीवनयापन करते हैं । भारतीय नारी के सन्दर्भ में स्वामी विवेकानन्द के विचार इस प्रकार हैं-

"भारत में स्त्री-जीवन के आदर्श का आरम्भ और अंत मातृत्व में ही होता है । प्रत्येक हिंदू के मन में स्त्री शब्द के उच्चारण से मातृत्व का स्मरण हो आता है, और हमारे यहाँ ईश्वर को माँ कहा जाता है । पश्चिम में स्त्री पत्नी है। वहाँ पत्नी के रुप में ही स्त्रीत्व को माँ कहा जाता है । पश्चिम में स्त्री पत्नी है । वहाँ पत्नी के रुप में ही स्त्रीत्व का भाव केन्द्रित है । भारत में जन साधारण समस्त स्त्रीत्व को मातृत्व में ही केन्द्रीभूत मानते हैं । पाश्चात्य देशों में गृह की स्वामिनी और शासिका पत्नी है । भारतीय गृहो में घर की स्वामिनी और शासिका माता है । पाश्चात्य गृह में यदि माता हो भी तो उसे पत्नी के अधीन रहना पड़ता है, क्योंकि घर पत्नी का है। हमारे घरों में पत्नी अनिवार्यतः माता के अधीन होती है । आदर्शों की इस भिन्नता पर ध्यान दीजिए ।"46

भारत का यह संस्कार रहा है कि यहाँ पर स्त्री के लिए किसी की पत्नी से बड़ा रिश्ता है माँ का । यहाँ पर शादी के बाद यदि नारी माँ हो जाती है तो घर या बाहर उसका अस्तित्व

बड़ा हो जाता है । उसके लिए पति उतना महत्त्वपूर्ण नहीं है जितना कि बच्चे हैं और घर के सभी सदस्य माँ बनने पर स्त्री की देखभाल से लेकर बच्चे के जीवनयापन में मदद करते हैं । वह पत्नी कम, माँ अधिक हो जातीहै । अच्छी माँ बनने के लिए भारतीय नारियाँ अपने कई शौक को छोड़ देती हैं । यदि कभी किसी पति-पत्नी में अनबन हुई तो दोनों ही इस अनबन को समझदारी से बच्चों के लिए त्यागकर समझौता करके सुखी जीवन बिताते हैं । सबसे ज्यादा त्याग बच्चे के लिए नारी करती है । कभी-कभी स्त्री विधवा हो जाती है तब वह दूसरी शादी नहीं करती । कारण कि दूसरी शादी होने पर बच्चों का ध्यान कौन रखेगा ? बच्चों के कारण नारी अपनी जिंदगी की सभी खुशियाँ त्याग देती है । इसलिए भारतीय संस्कृति में माँ का स्थान सबसे बड़ा होता है । माँ को भगवान का दर्जा दिया जाता है ।

इसके विपरीत पाश्चात्य देशों में ऐसा नहीं है । वहाँ पर स्त्री का पत्नी रुप ही सर्वोपरी होता है । वहाँ पर बच्चों को लेकर स्त्री-पुरुष इतने संवेदनशील नहीं होते हैं । वे बच्चों के लिए अपनी जिन्दगी को बदलते नहीं हैं । उनके संस्कार में हर दंपति को बच्चे हो यह भी आवश्यक नहीं माना जाता । और पति-पत्नी में अनबन हुई तब वे जल्द ही तलाक लेकर दूसरी शादी कर लेते हैं । फैसला लेने में देर नहीं करते हैं । या बच्चों आदि की बाध्यता नहीं मानते हैं । वे बच्चों को हॉस्टल, अनाथालय आदि स्थानों पर रखकर पालन-पोषण करते हैं । महिलाएँ कामकाजी होती हैं । वे बच्चों के लिए नौकर रखकर खुद कामकाजी महिला या पत्नी ही रहती है । माँ की परिकल्पना भारत और अन्य देशों में अलग-अलग है । भारत जैसा पवित्र माँ का रिश्ता कहीं नहीं है ।

ऐसी ही माँ है जीरा जो विधवा तो है, परन्तु दूसरी शादी करके अपने बच्चों के लिए समस्या नहीं बनाना चाहती है । वह हर कीमत पर बच्चों का पालन-पोषण करना चाहती है । खुद के लिए अब उसके पास शौक नहीं है । वह किसी की पत्नी बनकर नहीं रहना चाहती । उसने कई रिश्ते ठुकराए थे । सभी को लगता है कि जीरा अनपढ़ गँवार है, उसको कुछ समझ नहीं आता है । परन्तु ऐसा नहीं है । वह बहुत ही समझदार व संवेदनशील है । उसका शरीर

श्यामल वर्ण का था, छोटे कद की स्त्री थी जीरा। देखने में तो वह सुन्दर नहीं थी, परन्तु एक मजबूत व्यक्तित्व की थी।

"उसकी निर्विकार और सहज जीवन शैली को देखते हुए कुछ लोग उसे कुन्द बुद्धि भी कहते थे, परन्तु मैं जीरा के साहस और धैर्य से इतना प्रभावित थी कि उसे आकाश की उपमा से संबोधित करती। जीरा के लिए वह संबोधन भी शायद पूर्ण नहीं था क्योंकि आकाश तो शून्य है। उसमें कोई भाव या संवेदना नहीं है। अतः किसी परिस्थिति के चलते उसके विचलित होने की भी सम्भावना नहीं। परन्तु जीरा मानवीय भावों और संवेदनाओं के साथ निर्विकार और अविचलित थी।"[47]

जीरा का व्यक्तित्व बाहर से अलग था और अन्दर से अलग। वह गाँव की अनपढ़ महिला है। उसे स्त्री के अधिकार और अस्तित्व के बारे में नहीं पता परन्तु वह अपना कार्य कभी नहीं भूलती है। बच्चों के पालन-पोषण के लिए वह हमेशा प्रयत्नशील रहती है। जीरा एक चरित्रवान महिला है। विधवा होने पर भी वह अपने आपको अपने मरे हुए पति की यादों के सिवा किसी के सहारे नहीं रखना चाहती है। कई लोगों ने उसे नई शादी करने की सलाह दी, परन्तु वह दूसरी शादी के लिए तैयार नहीं थी। बच्चों के लिए वह किसान के खेतों में काम करती और फिर विद्यालय में साफ-सफाई की नौकरी भी करती है। जीरा स्वाभिमानी भी बहुत है। किसी के आसरे वह रहना भी नहीं चाहती है। उसके स्वाभिमान व चरित्र की एक वानगी देखिए-

"जीरा कुछ उखड़ गई थी माँ पर। बिगड़ते हुए ही उसने कहा था- तुम्हारे ऊपर भार नहीं है न हम, फिर अपनी इस उमर में हम अब क्या सोचें। और उसे मुझे बताना शुरु किया था कि-

किसी ने उसके पैर के अंगूठे को पकड़ कर खींचा था और उसने नींद में चौंकते हुए एक सांस में कई गालिया दे डाली थी। तब उसके पति ने बताया था कि कोई नहीं बल्कि उन्होंने ही उसके चरित्र की परीक्षा लेने के लिए ऐसा किया था। जीरा ने दुखी होते हुए फिर ऐसी परीक्षा न लेने के लिए कहा था क्योंकि इस तरह गालियों का प्रभाव उन्हीं पर तो पड़ा।"[48]

नारियों की दशा-दिशा जो भी हो, उन्हें समाज की रुढ़ियों से दो-चार होना ही पड़ता है । चाहे वो किसी भी समाज की, किसी स्तर की हो । प्रस्तुत कहानी में जीरा गाँव की अनपढ़ विधवा महिला है जो अपने जीवनयापन के लिए संघर्ष कर रही है । वह बहुत ही स्वाभिमानी है । किसी के उपर बोझ भी नहीं बनना चाहती है । वह नहीं चाहती कि कोई भी उसे सहारा दे चाहे वह देवर हो या भाई इत्यादि हो । विद्यालय में मिली नौकरी को वह इतनी तन्मयता से करती है कि लगता है वह अपनी लड़ाई लड़ने के लिए कहीं से भी कमजोर नहीं है । अपने परिवार से परेशान जीरा एक विधवा नारी है जो अपनी लड़ाई लड़ते हुए दिखाई देती है । यह कार्य शहर या बड़े महानगरों की स्त्रियाँ भी करती हैं । जो शिक्षित व जागरुक मानी जाती हैं, अपना बोझ खुद उठाती हैं । जीरा भी किसी विकसित शहर की किसी कामकाजी महिला के संघर्षों से कम संघर्षशील नहीं है । कहीं से भी वह निर्बल प्रतीत नहीं होती है । भले ही वह अनपढ़ व ग्रामीण महिला है ।

जीरा गाँव की अनपढ़ है फिर भी उसमें अपनी लड़ाई खुद लड़ने का हौसला भरपूर है । जैसे बड़े शहर की लड़कियों में होता है कि वे अपनी अस्मिता खुद तय करेंगी । जब जीरा से उम्र पूछी जाती है तो वह अपने हिसाब से गाँव की अनपढ़ औरतें जैसे हिसाब रखती हैं उस तरह से बताती है । परन्तु बताती जरुर है । जीरा निर्बल होते हुए भी निर्बल नहीं है । निर्बल वे हैं जो अपने हिस्से का संघर्ष न कर पाये जबकि जीरा अपने हिस्से का संघर्ष खुद करना चाहती है । वह किसी के सहारे नहीं रहना चाहती है । वह अपने संघर्ष में कोई भटकाव न हो इसके लिए स्वयं को और सभी को यह बार-बार बताती रहती है कि अब उसकी उम्र शादी की नहीं है । उम्र ज्यादा हो गयी है । ताकि वह खुद और सभी लोग उसे गम्भीरता से लें ।

गाँव की महिलाओं का सौन्दर्य उनके पतियों से होता है । जब पति नहीं होता है तो अक्सर ग्रामीण महिलाएँ शृंगार नहीं करती हैं । जीरा को भी पति का स्वर्गवास हुए तीन वर्ष हो गये थे। जब वह विद्यालय का शीशा फेंकने जाती है तो टूटे हुए शीशे में वह अपनी शक्ल देखकर

रोने लगती है और अपनी जिन्दगी के बाकी दिनों के लिए वह कितनी संवेदनशील है यह पता चलता है ।

*

4.12 सुभद्रा का चक्रव्यूह

प्रस्तुत कहानी में नीरजा माधव ने एक ऐसी नारी-चरित्र की रचना की है जो वर्तमान परिदृश्य में एक आदर्श की स्थापना करती है । लेखिका ने निहारिका के माध्यम से समाज में एक आदर्श उदाहरण प्रस्तुत किया है कि नारी पुरुष को जन्म देती है और आजीवन पुरुष के अधीन रह जाती है । पुरुष उसे अपने से दोयम दर्जे की समझता है । क्योंकि ऐसा सदियों से होता आ रहा है तो यह परम्परा बन गयी है कि नारी की यही दशा उचित है । पुरुष सारे संसाधनों पर कई दशकों से अकेला आधिपत्य स्थापित कर रहा है । उसकी नजर में यदि नारी सदियों से अपनी जो पहचान है उससे थोड़ा भी आगे बढ़ती है तो पुरुष को लगता है कि वह पुरुष के अधिकार क्षेत्र को हासिल कर रही है । जबकि पुरुष ने ही कई सदियों से नारी के हिस्से का संसाधन कब्जा करके रखा है । प्रस्तुत पात्र के माध्यम से लेखिका ने आधुनिकी पीढ़ी के एक आदर्श मार्ग को प्रतिबिम्बित किया है कि पुरुषों से लड़ने की अपेक्षा उन्हें सामने रखकर व साथ रहकर भी स्त्री अपना अस्तित्व बना सकती है । इसके लिए नारी का छोटे-छोटे छल-प्रपंच करना गलत नहीं है । स्त्री यदि पुरुष की उम्मीदों पर ही चले तो वह अपनी अलग पहचान नहीं बना सकती है क्योंकि पुरुष को सदियों की परम्परा व रुढ़ियों के सिवा कुछ दिखाई नहीं देता है । और स्त्री यदि आगे बढ़कर इन रुढ़ियों को तोड़ने की बात करे तो वह पुरुषों को बहुत खटकता है । पितृसत्तात्मक समाज में पुरुषों के साथ-साथ महिलाओं की भी सोच यही हो गयी है । ऐसा भी देखा गया है कि स्त्रियाँ भी मर्दवादी सोच के वशीभूत हो जाती हैं । तभी एक औरत दूसरी की अलग विकासोन्मुख छवि देखकर उस औरत के नये अस्तित्व को वह पसन्द नहीं करती है । कुछ ही ऐसी औरते हैं समाज में वरना औरतों का सहयोग औरत जरुर करती है ।

आज की औरतें अपनी गोद के लिए बड़े-बड़े ऑफर ठुकरा देती है । कठिन परिश्रम करके पढ़ाई करती हैं । अच्छी जॉब पाती हैं परन्तु यदि मातृत्व का सुख पाने में कुछ भी अड़चन आती है तो वे अपनी कैरियर संभालने से बड़ा काम मातृत्व को देती हैं। ऐसी ही है निहारिका । वह एक खिलाड़ी है जिसके अपने लक्ष्य है । मण्डलीय खेल फिर अन्तर्प्रान्तीय खेल आदि क्रम से खेलकर ही वह अपनी पहचान देश व प्रदेश स्तर पर बना सकती है । शादी के लिए वह तैयार नहीं होती है । जब उसे पता चलता है कि वह शादी के बाद भी खेल की प्रेक्टिस जारी रख सकती है तो शादी के लिए तैयार हो जाती है और अपने परिवार व पति के साथ हँसी-खुशी रहने लगती है । एक दिन निहारिका अपने पति सिद्धार्थ के साथ दौड़ने की प्रेक्टिस कर रही थी, तबी उसे चक्कर आ जाता है । सिद्धार्थ उसे ऑटो से हॉस्पिटल ले जाता है निहारिका की दोस्त डॉ. निशि के पास । जब उसे होश आ जाता है तो डॉ. निशि बधाई देते हुए बताती है कि अब तुम्हें प्रैक्टिस नहीं करनी चाहिए । इस पर सिद्धार्थ बहुत खुश होता है । दुनिया के कोई भी पति-पत्नी ऐसी खुशखबरी पर खुश ही होते हैं। परन्तु निहारिका को यह खबर अच्छी नहीं लगी थी। वह इसके बाद परेशान रहने लगी थी । वह समझती थी कि पुरुषवादी नजरिया तो औरत को कभी भी माँ बनने के सिवा कोई और महत्त्वपूर्ण कार्य के योग्य नहीं समझता है । क्या औरत सिर्फ माँ बनने के लिए होती है । माँ के अलावा नारी का कोई अस्तित्व नहीं है ? वह घर में रहे, बच्चे व परिवार की देखभाल करे यही उसकी दुनिया और योग्यता है ।

“दरअसल, स्त्रियों को खुद स्त्री-दृष्टि पैदा करनी होगी । अभी तो अधिकांश स्त्रियाँ पुरुष-दृष्टि से ही ग्रस्त हैं । अभी तक स्त्रियाँ खुद भी दूसरी स्त्री को एक स्त्री के रुप में देखने की क्षमता हासिल नहीं कर सकी है, इसलिए वे स्त्री होने के नाते दूसरी स्त्री की त्रासदी को नहीं समझ पातीं । सास-बहु का विवाद ऐसी ही सोच का परिणाम है । वे रिश्तों के संदर्भ में ही दूसरी औरत को समझती हैं । माँ भी बेटी को बेटी यानी संतान के नाते ही पहचानती है और बेटी माँ को माँ के रिश्ते के नाते । दोनों एक दूसरे को एक औरत होने के नाते नहीं

समझतीं। जिस दिन यह सोच निर्मित हो जाएगी, उस दिन स्त्री अपनी मुक्ति की आधी लड़ाई जीत लेगी।"[49]

रमणिका गुप्ता के इस कथन से स्पष्ट होता है कि नारी का दूसरी नारी के साथ जो रिश्ता होता है वह वहीं तक ही सेंस रखते हैं। एक औरत जब दूसरी औरत से सिर्फ औरत होने का रिश्ता रखना प्रारम्भ करेगी तभी मुक्ति की यह लड़ाई पूर्ण रुप से आगे बढ़ेगी। स्त्री के सौन्दर्य की योग्यता को, क्षमता को स्त्री की दृष्टि से कुछ देखने का उपाय करें तो सही मायने में स्त्री मुक्ति की लड़ाई सार्थक स्तर पर समझी जायेगी यानी कि जब तक स्त्री-पुरुषवादी सोच व नजरिए से देखेगी तब तक स्त्री मुक्ति सम्भव नहीं है। उसकी अपनी दृष्टि भी चाहिए। सोच में सकारात्मक परिवर्तन यदि होगा तभी सही रहेगा। हर पहलू पर औरत अपनी कसौटी खुद गढ़े तो ही सोच में, व्यवहारिकता में परिवर्तन आयेगा। कुछ बुद्धिजीवियों और उच्चवर्ग के इतर स्त्री को कोई उस स्थान पर नहीं देखना चाहता यह सिर्फ कुंठित मानसिकता है बस।

सुभद्रा का चक्रव्यूह की नायिका निहारिका भी पितृसत्ता की कसौटी से इतर अपने अस्तित्व के लिए औरत की नयी कसौटी गढ़ती है। अपने कैरियर को खतरे में देखकर निहारिका भी चिंतित रहती है। पति भी आश्वासन देता है परन्तु उसके आश्वासन में ही पितृसत्ता की सदियों की स्वीकारोक्ति थी जो कि निहारिका को चुभ रही थी।

वह ऐसी महिला नहीं है जो पुरुषों की कसौटी पर अपने को नहीं रख सकती है। वह अपना रास्ता खुद तय करेगी। पुरुष उसमें सहायक हो या न हो किसी पुरुष की इच्छा से वह स्वयं को कुर्बान नहीं करना चाहती है। वह अपनी लड़ाई स्वयं अपने तरीके से लड़ेगी। निहारिका का दृढ़-विश्वास उसे आगे की रणनीति के लिए सहायक है। वह अपने पति की इच्छा भी रखेगी, परिवार को भी देखेगी व अपनी पहचान को भी समाप्त नहीं होने देगी। बच्चे पैदा करना, कोख हरी करना तो कोई बाध्यता नहीं है परन्तु कोख के पीछे ही स्त्री अपना पूरा जीवन ही लगा रखे यह जरुरी नहीं है। यह तो पुरुषवादी सोच हो गयी है कि स्त्री के शरीर में कोख है तो वह सिर्फ उसी को सर्वोपरि रखे, जीवन के पहलू नारी के लिए नहीं है। पुरुष

सभी दिशाओं में प्रगति कर सकता है । समझौता सिर्फ स्त्री ही करे? स्त्री क्या सिर्फ कोख केलिए पैदा हुई है । रमणिका गुप्ता इस सम्बन्ध में अपने विचार व्यक्त करती हैं कि-

“जो परिवार, घर सुरक्षा का घेरा या संतान का मोह या ममत्व स्त्री को हिंसा से सुरक्षा न दिला सके, उसका होना न होना, कोई मायने नहीं रखता है । इसलिए इस परिवार नामक सुरक्षा-कवच, जो कि वास्तव में एक पिंजरा बन गया है, भय दिखाकर औरतों को डराना पुरुष सत्ता अब बंद करे तो अच्छा होगा । अन्यथा प्रतिक्रिया में उठा विद्रोह पुरुष या स्त्री, किसी के लिए भी कल्याणकारी नहीं होगा । इस समझदारी के लिए पुरुष को ही पहल करनी होगी । स्त्री तो पहले ही सब समझती है इसलिए सहती है ।“[50]

निहारिका की दोस्त डॉ. निशि पढ़ी-लिखी व समझदार थी । उसने निहारिका का सहयोग किया । उसे पता था कि कुछ अवसर जिन्दगी में सिर्फ एक बार ही मिलते हैं । जिन्दगी उजाड़ने से अच्छा है कि कुछ समय के लिए कोख ही उजाड़ दो । क्योंकि जिन्दगी सही रही, अपने अवसर की प्राप्ति अगर सही से हो गयी तो कोख तो फिर भी हरी हो जायेगी । दोनों दोस्त मिलकर रुढ़िवादी सोच से उपर उठकर नया फैसला करते हैं । पितृसत्तात्मक सोच को दरकिनार करके एक स्त्री की अस्मिता को पहले रखकर एक नया फैसला करती हैं । जो अन्ततः सफल भी होता है । निहारिका जानती है कि मातृत्व का सुख उसे बाद में भी मिल जायेगा, परन्तु जो मण्डल स्तर, प्रान्त स्तर पर खेल होते हैं वे तो दुबारा नहीं होंगे । कोख, परिवार, पति सब तो हैं, परन्तु आगे से यदि कुछ चीजों में सन्तुलन बनाकर वह अपनी अस्मिता की तलाश करना चाहती है तो सही है । यह बात तो पक्की ही है कि पुरुषवादी सोच के लोगों को यह बात अच्छी नहीं लगेगी । अतः पुरुष तो साथ देने से रहा । हाँ, अगर स्त्री का साथ स्री न दे तो यह कार्य मुश्किल होगा । नीरजा जी ने ऐसी कहानी गढ़ी है जिससे यह संदेश जाता है कि स्त्री के साथ यदि स्त्री खड़ी हो जाये तो वह निश्चय ही मुक्ति की सफलता मानी जायेगी । दोनों के निर्णय में पुरुष को शामिल न करके नीरजाजी ने यह संदेश दिया है कि पितृसत्ता तो हमेशा नारी के अस्तित्व को नकारेगी । उसकी परवाह न करते हुए स्त्री को कठोर होकर निर्णय करना चाहिए । निहारिका व डॉ. निशि के निर्णय के फलस्वरुप

निहारिका अन्तरप्रान्तीय प्रतियोगिता में सफल होती है और उसे आगे के खेलों में शामिल होने के लिए अनुमति मिल जाती है । यह सफलता सही निर्णय के फलस्वरुप ही मिली है । यदि रुढ़िवादी सोच के दायरे में रहकर निहारिका रह जाती तो भारत एक अच्छा खिलाड़ी खो देता । और न जाने कितनी प्रतिभाएँ ऐसी हैं कि जो इसी पुरुषवादी सोच के ईर्द-गिर्द रह जाती हैं ।

ऐसा भी नहीं है कि निहारिका सफल हो गयी, प्रतियोगिता प्रथम श्रेणी में जीत गयी तो वह अपने दायित्व को भूल गयी । परिवार, पति, समाज आदि के प्रति उसका जो दायित्व है वह निर्वहन करेगी । उसने पति को अंधेरे में रखकर जो कार्य किया है, उसको लेकर उसे पश्चाताप भी है । प्रतियोगिता जीतने के उपरान्त वह भावुक हो जाती है । रो-रोकर वह सब पति सिद्धार्थ को बताना चाहती है । बच्चे को देखकर वह अपने मातृत्व का एहसास करती है । प्रतियोगिता जीतने के बाद जह वह अपने पति के साथ प्रथम पंक्ति में बैठी होती है तो उसके साथ एक छोटी-सी घटना घटती है जिससे यह प्रतीत होता है कि नारी का हृदय नारी का ही होता है । कुछ समय के लिए भले ही वह कठोर हो जाये । उसे अपनी गलती का कुछ तो पछतावा भी है और पति को सब कुछ बताना भी चाहती है ।

“एकाएक उसकी टी-शर्ट की आस्तीन किसी ने पकड़ ली थी । वह चौंककर पीछे मूड़ी थी । पीछे बैठी महिला की गोद में एक चार-पाँच महीने का बच्चा अनजाने ही उसकी आस्तीन को मुठ्ठियों में पकड़कर किलकारी भर रहा था । निहारिका के हाथों से ट्राफी छुटकर जमीन पर गिर पड़ी थी और पश्चाताप के आँसुओं से उसका चेहरा मलिन हो गया था । वह सिद्धार्थ को पकड़कर फफक पड़ी थी । सिसकियों के बीच ही उसने सुना दी थी अपने अभिमन्यु की कुर्बानी ।”[51]

निहारिका भले ही समझौता करके यह प्रतियोगिता जीत लेती है परन्तु उसके मन में भी बच्चे को गँवाने का दुःख है । पति को अंधेरे में रखने का दुःख है । ममता तो सभी के अन्दर होती ही है, परन्तु भारतीय स्त्री का हृदय तो ममतामय होता है ।

*

4.13 अपने न होने का एहसास

एक स्त्री के रुप में देखा जाय तो यह कहानी नहीं एक महागाथा है । क्योंकि स्त्री की बाल्यावस्था से लेकर प्रौढ़ावस्था तक की एक गाथा है । सिर्फ जीवन की गाथा ही नहीं बल्कि नारी के संघर्ष की गाथा है । उसके बचपन से ही उसने एक नारी परत दर परत जीवन के विविध बदलाव की गाथा है ।

महागाथा इसलिए कि स्त्री को बचपन से ही एक ही कष्ट है । हर रिश्ता उसे उसके अस्तित्व के होने का एहसास दिलाता रहता है । उसकी जिन्दगी में अकसर ऐसा पल आता है कि जब उसे लगता है कि वह न होती तो अच्छा रहता । या हमेशा उसके सारे रिश्ते उसे गैर-जरुरी समझते हैं । उसके दिल में हमेशा कष्ट होता है जब भी उसे इसका एहसास होता है । सविता को हमेशा इस बात की टीस बनी रहती है कि वह एक लड़की है । और यह समाज पुरुषों का है । उसके हृदय का दर्द सबसे पहले आँखों से बाहर तब आया था जब उसकी माँ ने उसे यह कहा था कि तुम जब हँसती हो तो मुँह पर हाथ रख लिया करो । क्योंकि हँसते समय तुम्हारे बड़े-बड़े दाँतों के पीछे के मसूड़े भी दिख जाते हैं । नायिका को हमेशा एहसास होता है कि हर रिश्ते के लिए उसका होना न होने के बराबर है । वह सबके लिए बोझ है क्योंकि वह खूबसूरत नहीं है । उसका रंगरुप आकर्षक नहीं है ।

चाहे सविता हो या कोई भी नारी, कहानी की शुरुआती पंक्ति एक नारी की सटीक स्वीकारोक्ति सी लगती है ।

"ना जाने कितनी बार जिया है मैंने अपने न होने का एहसास । बार-बार मेरे कन्धों पर बेताल सा आकार झूलता वह एहसास और हर बाप अपनी सहनशक्ति और आन्तरिक तर्क शक्ति से उसे परास्त करती मैं, पर बेलात को अपने कन्धे पर लादे उस राजा की तरह मैं कहाँ पूर्ण मुक्त हो पाई थी उस बेताली एहसास से ?"[52]

उपरोक्त पंक्तियाँ सविता की ही नहीं बल्कि समाज में घटित नारियों के साथ बार-बार पितृसत्ता के आघात से उत्पन्न पीड़ा है । समाज में व्याप्त पुरुषवादी मानसिकता के कारण स्त्री दूसरे दर्जे की मानी जाती है । पुरुष उसे दमित व दलित मानकर उसे महत्त्व नहीं देता है

। वह उसके सामाजिक व राजनैतिक अधिकारों पर कब्जा करके बैठा है । उसे उसके लिए बार-बार ठेस मारी जाती है । चोट खानी पड़ती है । समाज उसे बार-बार एहसास दिलाता है कि स्त्री जाति का होना न होना कोई महत्त्वपूर्ण नहीं है । इसी बात का एहसास स्त्री जगत को आजीवन होता रहता है । समाज में स्त्री के पुरुष समाज द्वारा उपेक्षित होने के कारण सदियों से पितृसत्ता व रुढ़िवादिता की जड़ें सभी के दिमाग में रच-बस गयी हैं । चाहे वो स्त्री हो या पुरुष ।

परम्परागत रुढ़िवादिता के चलते सदियों से जो होता आ रहा है उसमें स्त्री भी पुरुषवादी मानसिकता की हो जाती है । जैसे कि सविता के साथ हो रहा था । उसकी ससुराल की सभी महिलाएँ उसके रंगरुप पर हमेशा हँसती रहती है । जबकि रंगरुप तो सविता ने बनाये नहीं थे । उसने तो पढ़ाई करके प्रवक्ता की नौकरी प्राप्त की थी । जिस कारण से उसकी शादी हुई, परन्तु नारी का दुर्भाग्य है कि उसे कहीं भी चैन नहीं मिलता है ।

“प्रत्येक स्त्री की प्राकृतिक चाह होती है विवाह करना और मातृत्व को प्राप्त करना । एक ओर विवाह तो दूसरी ओर कैरियर, दोनों स्त्री के लिए अलग-अलग रास्ते हैं जिन पर एक साथ चलना अत्यधिक कठिन कार्य है । नारी को दया, ममता, उदारता और त्याग की मूर्ति माना गया है । भारतीय समाज में माँ का रुप अग्रिम स्थान को प्राप्त है । माँ के रुप को प्राप्त कर जीवन की सारी कुंठाएँ खत्म हो जाती है । मातृत्व का सुख दुनिया का सबसे बड़ा सुख है ।”53

विश्व के किसी भी कोने में माता व बच्चों का रिश्ता सबसे अधिक प्यारा होता है । सबसे विश्वसनीय होता है । यह रिश्ता पूरे संसार का आधार होता है । इंसान ही नहीं, जानवर भी अपने बच्चे को कभी हानि या चोट नहीं पहुँचाना चाहते हैं । माँ शब्द की पवित्रता बहुत होती है । क्योंकि यह वह रिश्ता है जहाँ बच्चा सबसे अधिक महफूज रहता है । इंसान सारे रिश्ते भूला सकता है परन्तु माँ को कभी भी नहीं भूल सकता है ।

पाश्चात्य देशों में भी सृजन के कारण माँ का स्थान महत्त्वपूर्ण होता है । हालाँकि विदेशी सभ्यता में भारतीय की तुलना में माँ का स्थान कमतर होता है । वहाँ पर पत्नी प्रमुख

होती है। माँ बाद में होती है। परन्तु माँ का स्थान बच्चों के लिए सर्वोच्च होता है। स्त्री की सर्वोच्च खुशी की अवस्था में माँ बनना प्रमुख है। इस सम्बन्ध में सीमोन दु बोउवार ने भी स्त्री और पुरुष व सृजन के सम्बन्ध में लिखा है।

"नारी पृथ्वी है और पुरुष बीजरुप। नारी जल है और पुरुष अग्नि। अग्नि और जल के संयोग से ही सृष्टि का कार्य होता है।"[54]

एक माता ही होती है जो अपने बच्चे के लिए तड़प जाती है और बच्चा अपनी माँ के लिए तड़प जाता है। दोनों का रिश्ता एक दूसरे के लिए प्रतिस्पादन नहीं होता है। बिन माँ के बच्चे का लालन-पालन अच्छे से नहीं होता है। बिन माँ के बच्चा हमेशा प्रभावित रहता है। उसकी परवरिश अच्छे से नहीं हो पाती है। बच्चों की हरकतों व मासूमियत के कारण सभी को बच्चों से लगाव हो जाता है। और जो माता उसे पैदा करती है, परवरिश करती है, उसे तो अपार ममता होती है। इसीलिए हर रिश्ते पर, ममता का रिश्ता ही जीतता है। दुनिया का कोई भी देश हो, किसी भी भौगोलिक विस्तार के सामने, माँ की ममता ही सर्वोपरी होती है।

दुनिया, समाज व विद्वानों में साथ-साथ आधुनिक सोच से ओत-प्रोत यह बहस का विषय बन गया है कि स्त्रियों को बच्चे पैदा करने के बारे में सोचना चाहिए। कुछ स्त्री-विमर्श के झंडाबरदार लोगों ने यहाँ तक कहा है कि स्त्री को बच्चे नहीं पेदा करने चाहिए। क्योंकि उसके बाद स्त्री बच्चे की परवरिश में ही लगी रहती है। उसका जीवन स्वयं के लिए न होकर बच्चों के लिए हो जाता है। परन्तु ऐसा नहीं है। नारी की सबसे बड़ी असलियत उसका बच्चा होता है। माँ-बच्चे का रिश्ता दुनिया का बेसकीमती रिश्ता है। नारी की सबसे बड़ी जरुरत सबसे ज्यादा चाहत जहाँ प्रतिस्थापन के लिए कोई स्थान नहीं है वह है बच्चे के साथ रिश्ता। इसी रिश्ते को देखने की वकालत करती हैं लेखिका नीरजा माधव अपनी इस कहानी में।

'अपने न होने का एहसास' की नायिका 'सविता' अच्छा रंगरुप न होने के कारण, जबकि वह पढ़ाई में बहुत ही होशियार व एक स्तरीय नौकरी में होने के बावजूद, उसे शादी के लिए बार-बार नकारा गया। बमुश्किल शादी होती है तो सुरेन्द्र जो कि एक हकलाने वाला

व शराब का व्यसन करने वाला क्लर्क है । जब वह अपने पति सुरेन्द्र को व्यसन न करने की बात कहती है तो उस पर वह बलप्रयोग करता है । पति के परिवार के द्वारा भी उसकी कुरुपता पर व्यंग्य कसा जाता है । ऐसा लगता है कि समाज में नारी केवल सांसारिक सुन्दरता, भोग-विलास के लिए होती है क्या । सविता जब पति व परिवार से प्रताड़ित होने लगती है तो वह साड़ी को गले में बाँधकर पंखे से झूलकर अपनी जीवनलीला समाप्त करना चाहती है । क्योंकि उसे सभी रिश्ते उसके न होने का एहसास दिलाते रहते हैं । परन्तु उसे रोकता है उसका माँ होना, उसमें ममता का होना । इससे यह स्पष्ट होता है कि शारीरिक सुन्दरता पर माँ की ममता ज्यादा भारी होती है । प्रस्तुत कहानी के माध्यम से लेखिका ने नारी की मनोदशा का सार्थक व सकारात्मक निरुपण किया है । प्रताड़ना के कारण सविता की जीने की इच्छा खत्म हो चुकी थी । वह कोई खतरनाक निर्णय़ लेना चाहती थी । परन्तु उसी समय माँ की ममता जागृत हो जाती है । वह समझती है कि कहीं तो उसका अस्तित्व है । कोई तो है जिसे उसके होने से प्रसन्नता है, खुशी है । इसके सन्दर्भ में निम्न पंक्तियाँ दृष्टव्य हैं-

"आज पहली बार एहसास हुआ था अपने वास्तविक सौन्दर्य का । आज पहली बार बोध हुआ था अपने अस्तित्व के महत्त्व का । आज पहली बार महसूस किया था मैंने अपने न होने के एहसास से उपजे अभाव को ।"[55]

*

4. 14 आदिम गंध

लेखिका नीरजा माधव की कहानी 'आदिम गंध' भारतीय महिला के स्वाभिमान व अस्तित्व की कहानी है । इस कहानी में दो पात्र हैं- परतपिया जो कि अनपढ़ मजदूर है जिसका पति चोरी के कारण जेल में है । दूसरी पात्र मुक्ता है । वह भी तलाक लेकर अपने पति से अलग रहती है । दो प्रमुख नारी पात्र पति से अलग रहते हैं । परन्तु दोनों स्त्री अपने पतियों से अलग होकर भी जुड़ाव रखती हैं । भावनात्मक लगाव हमेशा रहता है । भारतीय नारी का प्रेम एक बार जिससे है तो वह जीवन भर रहता है । शारीरिक मानसिक रुप से

अलग हो सकते हैं, परन्तु भावनात्मक रुप से आजीवन जुड़ाव रहेगा जैसा कि परतपिया और मुक्ता को भी है ।

दोनों स्त्री पात्र अलग समाज का प्रतिनिधित्व करती हैं । एक नारी पढ़ी-लिखी सुशिक्षित आत्म-निर्भर है, दूसरी गाँव की अनपढ़ मजदूर है, परन्तु आत्मनिर्भर भी है । दोनों कर्म पर विश्वास रखनेवाली हैं । ईमानदारी और स्वाभिमान पर विश्वास रखने वाली अपनी-अपनी जगह पर निर्भीक भी हैं । दोनों पात्रों की कहानी में एक नारी का संघर्ष दिखाया गया है । लोक प्रचलित बात यह है कि स्त्री कमजोर होती है । वह पुरुषों के सहयोग के बिना जीवन नहीं जी सकती है । परतपिया व मुक्ता समाज के अलग-अलग वर्ग का प्रतिनिधित्व करते हुए यह दिखाती हैं कि पुरुष अनन्य कारणों से यदि स्त्री के साथ न रहे तो भी वह अपनी लड़ाई खुद लड़ने के लिए सक्षम है । अनपढ़ व शिक्षित से स्त्री के स्वाभिमान में कोई फर्क नहीं पड़ता है ।

मुक्ता को परतपिया से जब यह मालूम पड़ता है कि समाज की रीति है कि कुंवारी लड़की की शादी तलाकशुदा लड़के से हो जाती है परन्तु तलाकशुदा लड़की की शादी कुंवारे लड़के से नहीं हो सकती है । समाज के इस दकियानूसी विचार पर सामाजिक महिला मुक्ता को बहुत क्षोभ होता है । पुरुषवादी सोच में सिर्फ पुरुषवर्ग ही नहीं रहता, स्त्री भी इनके साथ में रहकर ऐसी ही हो गयी है । क्योंकि जो क्षोभ मुक्ता को होता है वह परतपिया में नहीं दिखता है ।

"क्यों कोई कुँवारा लड़का छोड़ी गई औऱत से शादी नहीं कर सकता?
अरे मेम साहब, की बात...? कुँवारा लड़का चार बच्चन की माई ले जाकर क्या करेगा? दुआह मरद भले कुँवार लड़की से कर ले...।"[56]

परतपिया आगे बोलती है कि गाँव स्तर पर लड़की की दुबारा शादी होना मुश्किल हो जाता है । होती भी है तो अनमेल विवाह होता है । वो समझौता होता है । परतपिया स्वयं अपनी कहानी बताती है कि किस तरह वह लालची बुआ के कहने पर साठ साल के बुढ़े से सगाई कर ली थी फिर मुझे वहाँ से भागना पड़ा था । बुआ ने अभी तक पैसे वापस नहीं किए थे ।

परतपिया की कहानी तो एक सफल स्त्री की कहानी जैसी है । अन्यथा से तो पत्र-पत्रिकाएँ भरे पड़े रहते हैं । रोज-रोज घटने वाली घटनाओं को सब अनदेखा कर देते हैं । निम्न पंक्तियाँ नारी जगत कि स्थिति को बयाँ करने में पूर्ण समर्थ हैं -

"यह तो हर दिन किसी न किसी लड़की के साथ, चाहे पढ़ी हो या अनपढ़, घटता रहता है । कभी फिल्मों में काम करने की चकाचौंध या विदेश भ्रमण का प्रोत्साहन, आत्मनिर्भरता की ललक या आर्थिक तंगी से ऊब, छली साथी के साथ नया जीवन शुरु करने की चाहत या फिर भ्रमित नारियों द्वारा भरमाई युवतियों के शोषण की कहानियों से हर दिन समाचार पत्र रंगे रहते हैं ।"[57]

कहानी की उपरोक्त पंक्तियाँ यह स्पष्ट करती हैं कि नारियों की दशा अपने देशमें कैसी है । जब स्त्री की इज्जत पर ही खतरा है तो उसके हक और अधिकार के लिए कौन लड़ाई लड़ेगा । समाज में लोगों को शिक्षित व स्त्री को जागरुक होना पड़ेगा । तभी स्त्री सर उठा के जी पायेंगी और उसको समाज में उचित स्थान मिलेगा ।

मुक्ता फिर चिंतन करती है कि पितृसत्ता की सोच प्राचीन व वैदिक काल से चली आ रही है । तभी तो यह मनुष्य की सोच में समा गयी है । फिर भी पुस्तकों में नारी की वैदिक या प्राचीन काल की जानकारी ले तो मिलता है कि तत्समय में स्त्री-पुरुष को समान अवसर हुआ करते थे । मातृसत्तात्मक समाज की भी बातें मिल सकती हैं. परन्तु क्या फर्क पड़ता है यदि तब ऐसा ही था तो उसका असर अब क्यों नहीं है । अब क्यों नारी के लिए दोहरे मापदण्ड अपनाए जा रहे हैं । पालन-पोषण व सृजन के भार से दबी नारी क्या तब नहीं करती थी ये सब ? नारी के कर्तव्य तब भी यही थे, अब भी यही हैं । कोई समानता नहीं सिर्फ कर्तव्य ही कर्तव्य होता होगा ।

उसके दिमाग में नारी की उन्नति के लिए ऐसा क्या होना चाहिए बस यही चल रहा था । परतपिया को किचन में काम करते हुए आवाज सुनकर मुक्ता को औरतों की प्रगति के लिए एक विचार आथा है । जैसे औरतों का रसोई में कार्य करना जन्मसिद्ध अधिकार है । उन्हें बचपन से ही कलछी पकड़ा दी जाती है । यदि बच्चियों को बचपन से ही कलछी की

जगह कलम पकड़ा दी जाये तो उनकी किस्मत बदल सकती है । जैसे परतपिया में प्रतिकार का गुण तो है, परन्तु पढ़ी-लिखी नहीं है यह दिक्कत है ।

लड़कियों की शिक्षा पर हर्ज न कर के अभिभावक शादी में दहेज दे देते हैं । परतपिया बताती है कि छोटी बहन को दहेज दे देते हैं। परतपिया बताती है की छोटी बहन को दहेज में देने के लिए पिताजी ने टी.वी. रखी है । जब तक शादी नहीं होती है घर में ही सब देखते हैं । उसे देखने पड़ो सा महताब भी आता है जिसके बारे में परतपिया बताती है कि वह टी.वी. देखने आता है तो हम दोनों बहनों के प्रति उसकी नीयत ठीक नहीं रहती है । मुक्ता उसे बताती है कि यह बात और किसी से मत कहना नहीं तो सब तुम दोनों बहनों को ही गलत समझेंगे । मुक्ता की इस सलाह पर परतपिया का प्रतिकार रुप सामने आता है कि-

"अरे मायी की बात, आज हम चुप रह जाऊँगी तो उसका मन नहीं बढ़ जाएगा? कल को दूसरी बहिन-बिटिया को....।"

कमजोर-सी परतपिया इस सामयिक दृढ़ता के सम्मुख मुक्ता को अपने संस्कार, सिद्धांत बीमार से लगे । शायद समाज में कमजोर होने के कारण ही परतपिया की सारी स्थिति सभी के सामने आवरण हीन सी है और इसलिए उसे खुल जाने में कोई हिचक नहीं, कोई डर नहीं । जबकि शूद्र से संस्कारों और सिद्धान्तों से आवृत्त मुक्ता में खुल पाने का साहस नहीं, शायद इसीलिए आज तक वह सब कुछ सहती जा रही है ।"[58]

परतपिया के संघर्ष में उलझी मुक्ता धीरे-धीरे अपनी जिन्दगी की तहें भी खोजती जाती हैं । परतपिया से खुद की तुलना करते हुए, वह सोचती है कि शिक्षित हो या अनपढ़ हो सभी का यही हाल है । वह स्वयं को सोचती रहती है कि पढ़ी-लिखी औरतों में ही कहाँ प्रतिकार होता है । वे तो और सभ्यता व संस्कार को ओढ़ लेती हैं । जिम्मेदारी को अपना आवरण बना लेती हैं और चुप रहती हैं । इस मामले में अनपढ़ मजदूर ही अच्छे हैं कि वे कम दूर तक सोचकर अपने ऊपर होने वाली समस्याओं का प्रतिकार आसानी से कर देते हैं ।

खुद की जिन्दगी में घटी घटनाओं के बाद कहती है कि कैसे स्वयं ही पति से तलाक के समय मैंने भी चुप्पी साध ली थी । अन्दर से मन बहुत कह रहा था कि चिल्लाकर बता दे कि

एक नारी क्यों सोचती है क्योंकि उसका पति अंतरंग समय में उसके ठंडे रहने का आरोप लगाकर तलाक ले रहा था । मुक्ता का बड़ा मन था कि वह भी चिल्लाकर बोल दे कि एक नारी क्या सोचती है आदिम गंध के बारे में । परन्तु एक नारी व एक माँ में माँ जीत जाती है । ममता जीत जाती है क्योंकि यदि स्त्री ने सच बोल दिया तो सब की इज्जत चली जायेगी - स्त्री की स्यवं की, पुरुष व संतान की । अतः ऐसा भूकम्प न आये इसके लिए नारी अकसर चुप रहने के सिवा कुछ भी नहीं कर पाती है । अतः नारी की दुर्दशा का इलाज एक मात्र शिक्षा ही नहीं है । मुक्ता को अपने चुप रहने का पश्चाताप तब और होता है जब उसे सहकर्मियों के द्वारा इतनी प्रशंसा मिलती है कि आप बहुत ही अच्छी हैं । सहकर्मी कमल है जो मुक्ता को एक बार स्पर्श करना चाहता है । वह कहता है कि मैं अपनी पत्नी से इजाजत लेकर आपको स्पर्श करना चाहता हूँ । इस घटना पर मुक्ता को अपने पति द्वारा लगाए गये आरोप याद आता हे कि कौन झूठा है , कमल या मेरा पति । फिर मुक्ता जानती है कि मेरे तलाक के बाद ही मेरा पति दूसरी औरत से शादी कर लेता है तो यह बात सही है कि यह मेरे पर ठण्डे होने का आरोप लगाकर मुझ से मुक्त होना चाहता था । स्त्री के साथ विडम्बना यही है कि पुरुष नारी पर चरित्रहीनता का आरोप लगाकर स्वयं विजय प्राप्त कर लेता है । यह इस कहानी का सार है । दोहरी सोच क्यों है समाज में ? पुरुष के लिए तो सभी अवसर हैं लेकिन महिलाओं को पुरुषों द्वारा बताए गये नियमों पर चलना पड़ता है । जिसके वे ही जज व वे ही वकील होते हैं ।

"बाबा और महतबवा में क्या अंतर था ? नोट शौट पर लिखी अपनी ही पंक्ति 'नारी को कलछी नहीं कलम दो' उसे मुँह चिढ़ा रही थी । कलम पकड़ कर ही वो कितनी मुक्त हो सकी थी जो परतपिया कलछी पकड़कर नहीं हो पायी थी ।"[59]

नारी मुक्ति तभी संभव है जबकि नारी अपनी मर्दवादी सोच के उपर उठे । यदि उन्हें पुरुष के बराबर अवसर मिल भी गये तो कुछ बदलने वाला नहीं है । पितृसत्तात्मक समाज में रहते हुए स्त्रियों की सोच भी पितृसत्ता के अनुकूल हो गयी है । अतः सोच में परिवर्तन से ही नारी मुक्ति संभव है । प्रतिकार का स्वर ही नारी की दशा व दिशा बदल सकता है ।

*

4.15 उपसंहार: अब क्या करें ?

कहानीकार नीरजा माधव की कहानी 'उपसंहार: अब क्या करें ?' में सिर्फ शीर्षक में ही प्रश्न नहीं है बल्कि कहानी को एक ऐसे मोड़ पर समाप्त करती है कि पाठक के जेहन में सवाल रह जाता है कि 'अब क्या करें ? ' क्योंकि कहानी की नायिका अंजना के बचपन से लेकर शादी के बाद तक की जीवन लीला है इसमें जिसमें वह माता-पिता के साथ परम्पराओं और रीति-रिवाजों के साथ रहती है। पिता रायसाहब पहले जमींदार थे अब उन्हें अपना घर परिवार चलाने में दिक्कत है। परन्तु पुरानी रुढ़ियों के साथ-साथ उनकी सोच में भी प्रगति होती है। वे पुराने संस्कार की दुहाई देते हैं परन्तु नये समाज की सोच के अनुसार अपने को बदल भी रहे होते हैं। उन्हीं के एक कथन से उनकी प्रगतिवादी सोच का पता चलता है।

"उनके खानदान में लड़कियों को रामायण, गीता की हिन्दी टीका मिलाकर पढ़ लेने भर ही की शिक्षा दिए जाने की परम्परा थी। अब तो प्रगति के नाम पर स्त्री-शिक्षा की माँग वर पक्ष की तरफ से भी उठने लगी थी। दान-दहेज में कोई कमी नहीं हुई, अलबत्ता लड़कियों की पढ़ाई का बोझ और चिंता भी सिर पर सवार हो गयी है। मरता क्या न करता? बिना पढ़ाए अच्छा वर मिलना कठिन था।"[60]

तो इस तरह की प्रगतिवादी सोच थी रायसाहब की। जागरुकता से न सही मजबूरी में ही वे रुढ़िवादी परम्परा को तोड़ तो रहे थे। आधुनिकता को स्वीकार कर रहे थे। पितृसत्तात्मक सोच के साथ-साथ प्रगतिवाद को भी वे स्वीकार रहे थे। रायसाहब की परम्परा तब टूटती है जब उनकी बेटी नारी मुक्ति के रास्ते पर चल देती है। और उनकी परम्परा व रुढ़िवादिता के खिलाफ विद्रोह का बिगुल बजा देती है। क्योंकि शादी के बाद जब अंजना पहली बार परीक्षा देने के समय कालेज जाती है तो वहाँ भी देवराज का प्यार उसे आकर्षित करता है। नतीजा यह होता है कि वह देवराज के साथ अपनी परम्परा व प्रगतिवादी साज को छोड़कर नारी मुक्ति के खुले आसमान में रहना चाहती है तो उसने अपना रास्ता चुन लिया।

"लेकिन उसका दूसरा पत्र पाकर जब देवराज उससे मिलने कालेज पहुँच गया तो बेड़ियों को उसने झनझनाकर तोड़ डाला। उसे भी अपना निर्णय स्वयं लेने का अधिकार है। वह गाय-बैल तो नहीं है, जिसे किसी भी खूँटे से बाँध दिया जाए। हर मामले में पितृसत्ता ही क्यों प्रभावी रहे? स्त्री की अपनी अलग अस्मिता है। वह स्वतंत्र है। मुक्ति की कामना उसकी रग-रग में फूटने लगी थी। और वह चुपके से परीक्षा समाप्त होने से पूर्व ही नई परीक्षा देने देवराज के साथ निकल भागी थी।"[61]

स्त्री मुक्ति के चमकीले रास्ते पर अंजना चल तो दी परन्तु उस चमक-दमक के नीचे जो संघर्ष की आग है उसे वह नहीं समझ पा रही थी।

नायिका रुढ़िवादी संस्कारों, प्रगतिवादी संस्कारों और स्त्री मुक्ति के त्रिकोण में है। रुढ़िवादी संस्कारों में रायसाहब हैं जो कि सभ्यता संस्कृति की दुहाई देते रहते हैं। वही उचित था बताते रहते हैं। और दूसरा है प्रगतिवादी सोच जो उससे कुछ अच्छा है। सुधार होता है परन्तु धीरे-धीरे। तीसरा त्रिकोण है स्त्री मुक्ति का जो अंजना चुनती है। इसी भंवर में अंजना की जिन्दगी घूम रही है। उसके लिए क्या उचित है। इसी सवाल का जवाब पाठक को देना है। लेखिका एक सवाल करने के लिए ही यह कहानी व पात्र अंजना को बुनती है।

कहानी की नायिका अंजना कालेज की लायब्रेरी में बैठकर स्त्री-विमर्श सम्बन्धी साहित्य का अध्ययन करती है। जिससे उसे एक जागरुक नारी होने के कुछ तथ्य मिलते हैं। उसका अध्ययन मुक्ति को लेकर पूर्ण नहीं था। वरना वह पितृसत्ता के विद्रोह में अपने पिता के निर्णय के खिलाफ ही ले लेती जीवन की गाड़ी बहुत आगे निकल जाने पर अब उसका ऐसा देवराज के साथ जाना स्त्री मुक्ति के अधूरे जागरुक होने के लक्षण दिखते हैं।

इसी पक्ष को लेकर देवराज उसके पास आ जाता है और उसने भी प्राचीन रुढ़ि परम्परा को त्यागकर स्त्री मुक्ति की राह पर चलने के लिए सभी बंधन तोड़ देना चाहती थी। स्त्रियों का यही तो है। वो न घर की सजावट बनकर रहना चाहती है और न ही किसी मंदिर की मूर्ति ही। वे स्वतंत्र होकर स्वच्छंद रहकर अपनी अस्मिता के लिए सक्रिय रहना चाहती हैं।

"प्रश्न है नारी मुक्ति का अभिप्राय क्या है ? इसका उद्देश्य क्या मर्द का मुकाबला करना है ? कदम से कदम मिलाकर चलने का अर्थ मर्दाना व्यवहार और आचार की नकल ? या फिर अपने स्वयं के दायरे को बढ़ाना और अपनी बेड़ियों को अपनी आवश्यकता देखकर तोड़ना ? पूर्व में एक देवी है, पश्चिम में एक पुर्जा । दोनों जगह बेजान । एक जगह पत्थर दूसरी जगह लोहा । हर जगह उसे गढ़ने वाला मर्द समाज अपने लाभ को दृष्टि में रखकर औरत को स्वतंत्रता देता है । तकनीकी और सभ्यता के शौर्य मुकुट बनने में औरत केवल मनोरंजन का साधन है ।"[62]

अंजना नामक पात्र को लेखिका ने इस तरह प्रस्तुत किया है कि नारी अब रुढ़िवादिता व प्रगतिवादी सोच से आगे स्त्री-मुक्ति के मार्ग पर अग्रसर है । वह अब उदारवादियों के भरोसे नहीं रहना चाहती है । खुले आसमान में अपने और इस मुक्ति के रास्ते में जो बाधा उत्पन्न होती है उससे वह टकराने को भी तैयार है । चाहे वो कुंठित मानसिकता हो या पितृसत्ता की सोच । वह विद्रोह को ही अपना मार्ग बनाना चाहती है ।

अंजना का विद्रोह भी इतना गलत नहीं था जितना कि परिस्थितियाँ बन गयी हैं । कालेज देवराज आता है । उससे मिलता है । बातें करके परीक्षा पूर्ण होने से पहले दोनों अपने अधूरे जीवन को साथ में पूर्ण करने के लिए निकल जाते हैं । देवराज उससे कोर्ट मैरिज भी करना चाहता है । परन्तु पुलिस की खोजबीन से वह डर जाता है । उसको लगता है कि अंजना की वजह से वह मुश्किल में है ।

"परन्तु जब देवराज को पता चलता है कि उसका नाम पता ढूँढकर उसके नाम से पुलिस जासूसी कुतिया की तरह देवराज नाम के चोर को तलाश रही है तो उसके भीतर की शृंगार रस का सोता सूखने लगा । अंजना उसे अब रुखी खुरदरी चट्टान सी लगने लगी जिसे गले में बाँधे-बाँधे वह भी डूब जाएगा । " उसने गले का बंधन ढीला करना चाहा । बहती हुई गंगा में इस चट्टान के जल-समाधि लेने की अव्वल तो किसी को खबर ही नहीं होगी और यदि दूर कहीं किसी किनारे उतराई मिल भी गई तो उससे क्या वास्ता? उसके घर वाले जानें।"[63]

सच है जिन्दगी के सफर में जब तेज धूप बाधा आदि आती है तो बड़े से बड़े मनुष्य अपना रास्ता बदल देते हैं। देवराज उनमें से एक है। उसने भी संघर्ष के बजाय मुश्किलों से भागने का ही मार्ग अपनाया क्योंकि परम्परा जब टूटती है तो उनके प्रतिस्थापन के लिए जो मजबूती चाहिए वह सामर्थ्य देवराज के बस का नहीं है।

अंजना को गंगा के किनारे लोग बचाते हैं। लेखिका उसके साथ अब तक घटी घटनाओं को लेकर रुढ़िवादिता, प्रगतिवाद व स्त्री मुक्ति तीनों आयामों को उचित व अनुचित के पैमाने पर तोलने की कोशिश करती है और पाठक को संकेत करती है कि तीनों में से क्या सही है।

"इन बीस दिनों की देहमुक्ति या नारी-मुक्ति को किस तरह ढोए ? त्रिकोणीय साहित्यिक विन्यास के अनुरुप क्या होना चाहिए अंत इसका ? प्रगतिवाद ने तो मझधार में छोड़ दिया, पटक दिया कि, कहीं की नहीं रही वह। क्या पुनः परम्पराओं की चौखट पर जाए वह ? प्रगतिवाद, परम्परा और स्त्रीवाद, तीनों के दृष्टिकोण से इस कहानी को अलग-अलग लिखने के बाद भी उपसंहार वही एक यथार्थ पर आकर ठिठक जा रहा है कि अंजना अब क्या करे ?"[64]

वर्तमान परिस्थितियों में भी स्त्री के सम्मुख दिक्कत यही है। अंजना जैसी नारी स्त्री की मुक्ति चाहती है। सवाल यह भी बनता है कि तीनों आयामों में परंपरावाद, प्रगतिवाद और स्त्री मुक्ति में वह किस आयाम को अपने लिए सही माने। पिता, प्रेमी व पति में स्त्री की मानसिकता बन नहीं पाती कि सही क्या है।

सन्दर्भ

1. डॉ शिव प्रसाद सिंह का कथा साहित्य संवेदना एवं शिल्प, डॉ. अमित अवस्थी, पृष्ठ 19
2. वाया पांडेपुर चौराहा (कहानी संग्रह), कहानी - शीर्षक क्या दूँ ?, नीरजा माधव, पृष्ठ. 163
3. वही, पृष्ठ.165
4. वही, पृष्ठ.165
5. ईक्कीसवीं सदी के हिंदी महिला कथा साहित्य में स्त्री विमर्श, डॉ. अंजली चौधरी, पृष्ठ. 83

6. शीर्षक क्या दूँ ?, नीरजा माधव, पृष्ठ. 165
7. वही, पृष्ठ. 169
8. वही, पृष्ठ. 172
9. वाया पांडेपुर चौराहा (कहानी संग्रह), कहानी- उष्ट्र उष्ट्र ही सही , नीरजा माधव, पृष्ठ.183
10. वाया पांडेपुर चौराहा (कहानी संग्रह), कहानी- हव्वा, नीरजा माधव, पृष्ठ. 95
11. वही, पृष्ठ. 93
12. वही, पृष्ठ. 89
13. वही, , पृष्ठ. 93
14. प्रतिरोध के स्वर, लेख- भारतीय लेखिकाओं के आत्मकथ्य, सुदेश बत्रा, पृष्ठ. 8
15. नारी विमर्श और मैत्रेयी पुष्पा का कथा साहित्य, डॉ. अनिला के. पटेल, पृष्ठ. 57
16. प्रतिरोध के स्वर, लेख- भारतीय लेखिकाओं के आत्मकथ्य, सुदेश बत्रा, पृष्ठ. 8
17. पथदंश (कहानी संग्रह), कहानी- इसलिए भी, नीरजा माधव, पृष्ठ. 81
18. वही, पृष्ठ. 81
19. स्त्री-विमर्श का लोक पक्ष, अनामिका, पृष्ठ. 13
20. पथदंश (कहानी संग्रह), कहानी - तूफान आने वाला है , नीरजा माधव, पृष्ठ. 42
21. वही, पृष्ठ. 42
22. स्त्री -विमर्श : साहित्यिक और व्यवहारिक सन्दर्भ, डॉ. करुणा उमदे, पृष्ठ, 88
23. वही, पृष्ठ. 88
24. पितृसत्ता के नये रुप, सं. राजेन्द्र यादव, प्रभा खेतान, अभय दूबे, पृष्ठ. 147
25. कहानी - तूफान आने वाला है , नीरजा माधव, पृष्ठ. 42
26. आधुनिकता और महिला उत्पीड़न, मानचन्द खंडेला, पृष्ठ. 133

27. मुक्ति-संघर्ष और इतिहास, रमणिका गुप्ता, पृष्ठ. 43

28. अभी ठहरो अंधी सदी(कहानी संग्रह), कहानी- अभी लड़ाई जारी है।, नीरजा माधव, पृष्ठ. 121

29. वही, रमणिका गुप्ता, पृष्ठ. 25

30. कहानी- अभी लड़ाई जारी है।, नीरजा माधव, पृष्ठ.128

31. वही, पृष्ठ. 128

32. पितृसत्ता के नये रुप- स्त्री और भूमण्डलीकरण, संपादन-राजेन्द्र यादव, प्रभा खेतान, अभयकुमार दूबे,पृष्ठ. 190

33. अभी ठहरो अंधी सदी(कहानी संग्रह), कहानी- एरियर, नीरजा माधव, पृष्ठ. 147

34. वही, डॉ. करुणा उमदे, पृष्ठ.169

35. वही, डॉ. अंजली चौधरी, पृष्ठ. 194

36. वही, कहानी- एरियर, नीरजा माधव, पृष्ठ. 158

37. वही, पृष्ठ., 144

38. वही, सुरेश बत्रा, पृष्ठ. 4

39. वही, मानचन्द खंडेला, पृष्ठ. 32

40. अभी ठहरो अन्धी सदी(कहानी संग्रह), कहानी- देश के लिए, पृष्ठ. 84

41. उपनिवेशदवाद से आधुनिकता तक, स्त्रि-कथा, डॉ. खेमसिंह डहेरिया, पृष्ठ. 199

42. प्रेम सम्बन्धों की कहानियाँ(कहानी संग्रह), कहानी-वह नहीं तो यह, नीरजा माधव,सं. अनिल कुमार, पृष्ठ. 21

43. वही, पृष्ठ. 23

44. वही, पृष्ठ. 25

45. वही, रमणिका गुप्ता, पृष्ठ. 124-125

46. नारी विमर्श की भारतीय परम्परा, संपादक,संकलन- कृष्णदत्त पालीवाल, शीर्षक- भारतीय नारी- स्वामी विवेकान्द, पृष्ठ. 16

47. प्रेम सम्बन्धों की कहानियाँ(कहानी संग्रह), कहानी- चिटके आकाश का सूरज, पृष्ठ. 27

48. वही, पृष्ठ. 30

49. वही, रमणिका गुप्ता, पृष्ठ. 46

50. वही, पृष्ठ. 126

51. प्रेम सम्बन्धों की कहानियाँ(कहानी संग्रह), कहानी- सुभद्रा का चक्रव्यूह, पृष्ठ. 37

52. प्रेम सम्बन्धों की कहानियाँ(कहानी संग्रह), कहानी -अपने न होने का एहसास, पृष्ठ. 38

53. वही, डॉ. अनिला के. पटेल, पृष्ठ. 76

54. स्त्री उपेक्षिता, डॉ. प्रभा खेतान, पृष्ठ. 77

55. वही, कहानी - अपने न होने का एहसास, पृष्ठ. 44

56. प्रेम सम्बन्धों की कहानियाँ (कहानी संग्रह), कहानी - आदिम गंध, पृष्ठ. 69

57. वही, पृष्ठ. 71

58. वही, पृष्ठ. 74

59. वही, पृष्ठ. 76

60. प्रेम सम्बन्धों की कहानियाँ (कहानी संग्रह), कहानी- उपसंहार : अब क्या करें ?, पृष्ठ. 175

61. वही, पृष्ठ.179

62. वही, डॉ. अनिला के. पटेल, पृष्ठ.

63. वही, कहानी- उपसंहार : अब क्या करें?, पृष्ठ. 181

64. वही, पृष्ठ.182